भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) की केन्द्रीय कमेटी का मुखपत्र

अगस्त 2022

प्रतिरोध का स्वर

वर्ष 36
संख्या 8

मूल्य 5 रुपये

3 अगस्त को वन संरक्षण नियम 2022 के खिलाफ धरना : संघर्ष का बिगुल

हजारों वर्षों से वन और वन भूमि पर रह रहे आदिवासी और अन्य पारंपरिक जातियों को विस्थापित कर जंगल भूमि और उसकी अकूत खनिज संपदाओं की कारपोरेट लूट, औद्योगिक कार्यों के लिए निजी कंपनियों को सौंपने के षड़यंत्र के तहत केंद्र में सत्तारूढ़ आरएसएस– भाजपा की नरेंद्र मोदी सरकार द्वारा लाए गए वन संरक्षण नियम 2022 के खिलाफ आदिवासी तथा किसान संगठनों ने संघर्ष छेड़ने का ऐलान किया है। कई राज्यों से आए आदिवासी और किसान संगठनों के नेताओं ने आदिवासियों व अन्य पारंपरिक वनवासियों के खिलाफ वन अधिकार कानून को कमजोर कर आरएसएस–भाजपा सरकार द्वारा चौतरफा युद्ध के खिलाफ संघर्ष छेड़ने के लिए 3 अगस्त को अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा के बैनर तले संसद भवन के समक्ष जंतर–मंतर पर विरोध प्रदर्शन कर धरना दिया।

एआईकेएमएस ने आदिवासियों और उनके संगठनों का आह्वान किया है कि वह इस वर्ष के अंतरराष्ट्रीय मूल निवासी जन दिवस (9 अगस्त) को आरएसएस–भाजपा की सरकार के आदिवासी, वन और जन विरोधी निर्णय के खिलाफ देश व्यापी विरोध दिवस के रूप में मनाएं। इसके लिए स्थानीय और जिला स्तर व्यापक विरोध कार्यक्रमों का आयोजन करें। एआईकेएमएस ने आदिवासियों के बीच काम कर रहे संगठनों का वन अधिकारों को समाप्त करने वाले "काले नियमों" के खिलाफ राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने की घोषणा की। धरने को संबोधित करते हुए किसान व आदिवासी संगठनों के नेताओं ने कहा कि वन संरक्षण नियम ग्राम सभाओं की शक्ति को समाप्त करने के साथ ही कारपोरेट के लिए वनों पर कब्जा करना आसान बना देगा और वन विभाग की नौकरशाही ताकतवर हो जाएगी। केंद्र सरकार कारपोरेट को राज्य, ग्राम सभाओं और आदिवासियों की मंजूरी के बिना उसकी परियोजनाओं के लिए वन भूमि दे सकेगी। वक्ताओं ने कहा कि एफआरए 2006 का कार्यान्वयन भले ही धीमा रहा हो लेकिन वन भूमि का अधिग्रहण करना उस कानून के चलते एक बड़ी बाधा था, जिसे अब संशोधन के जरिए हटाया जा रहा है।

संसद भवन के सामने हुए विरोध प्रदर्शन में एआईकेएमएस से संबंधित तेलंगाना, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, ओड़िशा, आंध्र प्रदेश तथा प. बंगाल से आदिवासी और किसान संगठनों के नेता व कार्यकर्ता शामिल हुए। नेताओं ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि देश भर में आरएसएस–भाजपा पहली बार आदिवासी महिला को राष्ट्रपति बनाने का जश्न मना रही है। वहीं उसकी सरकार वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों के अधिकारों का खात्मा कर रही है। वन संरक्षण नियम 2022 के जरिए अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों के वन अधिकारों की मान्यता समाप्त की जा रही है जिसे आदिवासियों ने एफआरए 2006 के जरिए लंबे और कठिन संघर्षों द्वारा हासिल किया था।

धरना स्थल पर बिहार के कैमूर से आए आदिवासी महिलाओं व पुरुष संस्कृति कर्मियों ने लोकगीत, संगीत और नृत्य के जरिए अपनी बात कही। धरने को संबोधित करते हुए नेताओं ने कहा कि आरएसएस–भाजपा की सरकार कारपोरेट कंपनियों को रियायतें देने, बैंक का लाखों करोड़ रूपया एनपीए करने, घरेलू और विदेशी स्रोतों से उधार लेने के कारण भारी कर्ज में डूब गई है। सरकार गंभीर वित्तीय संकट का सामना कर रही है। अपनी साम्राज्यवाद परस्त नीतियों के कारण वह विदेशी मुद्रा कमी के गंभीर संकट के दौर में प्रवेश कर रही है। इस वित्तीय संकट से उबरने के लिए वह देश की वन, खनिज तथा प्राकृतिक संपदा को बेचना चाहती है और इसके लिए वह बहुराष्ट्रीय कंपनियों और बड़े कारपोरेट को पूंजी निवेश के नाम पर सस्ते में बेच देने की योजना पर काम कर रही है।

वक्ताओं ने कहा कि सरकार विकास के नाम पर आदिवासियों व सदियों से वनों में रह रहे वनवासियों को बड़े पैमाने पर उजाड़ कर उन्हें विस्थापित करने और बाजार में सस्ते श्रमिक के रूप में बदल देना चाहती है। इससे पूर्व उसने 3 कृषि कानूनों के जरिए किसानों से जमीन छीन कर कारपोरेट कंपनियों को देने की कोशिश की थी लेकिन 1 वर्ष तक चले किसान आंदोलन ने उसे कृषि कानून वापस लेने के लिए विवश कर दिया था। आदिवासी नेताओं ने कहा कि आरएसएस–भाजपा सरकार की आदिवासियों को हटाकर जल, जमीन और जंगल कारपोरेट को सौंपने की कोशिशों को देश की जागरूक जनता, किसान, श्रमिक, युवा सफल नहीं होने देंगे।

एआईकेएमएस अध्यक्ष वी वेंकटरमैया ने कहा कि आदिवासियों के वन पर अधिकार कानून की रक्षा के लिए देशव्यापी आंदोलन चलाने की तैयारी की जा रही है। इस संघर्ष में आदिवासी संगठन, किसान संगठन और श्रमिक यूनियनों की

(शेष पृष्ठ 6 पर)

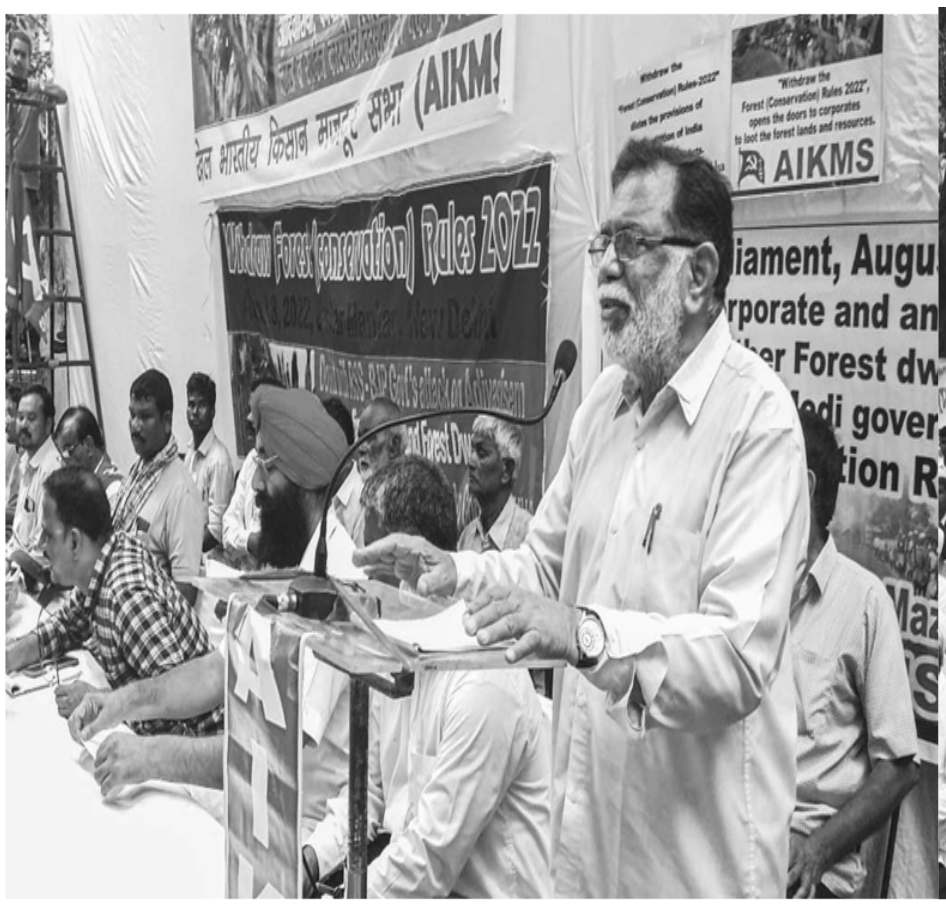

वन संरक्षण नियम 2022 के खिलाफ अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा (ए.आई.के.एम.एस.) द्वारा 3 अगस्त 2022 को जंतर मंतर संसद मार्ग दिल्ली पर धरना दिया गया। धरने में तेलंगाना, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, ओडिशा, आंध प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल से ए.आई.के.एम.एस. कार्यकर्ताओं तथा नेताओं ने भाग लिया। इनके अतिरिक्त अन्य संगठनों के प्रतिनिधियों तथा दिल्ली से विभिन्न जन संगठनों के नेताओं ने भी भाग लिया। ऊपर (बायें) धरने को संबोधित करते हुए ए.आई.के.एम.एस. अध्यक्ष का. वी. वैंकटरमैया तथा मंच पर बैठे ए.आई.के.एम.एस. के नेतागण व आदिवासियों के प्रतिनिधि तथा (दायें) घरने का एक दृश्य जिसमें भाग लेने वाले साथियों का एक हिस्सा दिखाई दे रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: आम जन से शिक्षा छीन, मुनाफाखोरों की थैली भरने की तैय्यारी

मृगांक

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (नेप 2020) दरअसल विश्व व्यापार संगठन और विश्व बैंक द्वारा निर्देशित सूत्रों पर ही आधारित है जिस की मूल भावना है की शिक्षा को व्यापारिक सेवाओं में अर्थात मुनाफा कमाने वाली सेवाओं में शामिल किया जाए, शिक्षा पर होने वाला सरकारी खर्च कम से कम करा जाए और इसे पूरी तरह से मुनाफाखोरी के हवाले कर दिया जाए। 1995 के बाद से इसे लागू नहीं किया जा सका, और जब विकसित देशों में 2000 के बाद लागू करने का प्रयास किया गया तो वहां इसका पुरजोर विरोध हुआ। इसके चलते विश्व व्यापार संगठन ने तीसरी दुनिया के देशों का रुख किया। भारत ने 2005 में ही इस पर हस्ताक्षर करने की प्रतिबद्धता जाहिर कर दी थी। पर अनेक विरोधियों के चलते तत्कालीन यूपीए सरकार इसे लागू नहीं कर सकी।

इसके मूल में विदेशी शिक्षा व्यापारियों को बिना किसी पाबंदी के देश में व्यापार करने की छूट, शिक्षकों व छात्रों का बेरोकटोक आवागमन, ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा, मजबूत केंद्रीय नियंत्रण तथा एकरूपता शामिल है। वर्तमान सरकार जो अपनी साम्राज्यवाद परस्ती को राष्ट्रवाद के पर्दे तले छुपाने की कोशिश करती है, ने इन शर्तों को लागू करना शुरू किया। इस पर मोदी सरकार 2016 से ही काम कर रही है। एक के बाद एक दस्तावेजों के बाद, 2020 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति अर्थात नेप 2020 सामने आई।

यह पहली शिक्षा नीति है जो 3 साल से बच्चे से लेकर शोध छात्रों तक को कवर करती है। आंगनवाड़ी जो समेकित बाल विकास योजना का भाग है, और निचले तबके के बच्चों को स्कूल पूर्व शिक्षा व पौष्टिक भोजन आदि मुहैया कराती है, को भी अब शिक्षा नीति में समेट लिया गया है। इस तर्क को रखते हुए कि स्कूल पूर्व शिक्षा यदि अच्छी हो तो बच्चे स्कूल में अच्छा करते हैं। जैसा कि इस नीति के पूरे दस्तावेज में है जो भी समस्या चिन्हित की जाती है, उसका समाधान एकदम उलटा दिया गया है। यहां पर भी ऐसा ही है। स्कूल प्रवेश के लिए प्रीस्कूलिंग़ आवश्यक बनाई गई है पर अच्छी प्रीस्कूलिंग़ नहीं। यहां सुझाव रखा गया है कि संसाधनों के अभाव में हमें नए तरीके अपनाने होंगे जैसे बोतल में पत्थर डालकर झुनझुने बनाए जा सकते हैं। इसका मतलब कि स्कूल पूर्व शिक्षा में सुधार नहीं बल्कि घटिया स्कूल पूर्व शिक्षा ही दी जाएगी। बजाय इसके कि यदि संसाधन नहीं है तो उनको मुहय्या किया जाए। स्पष्ट है ऐसा सरकारी शिक्षा पाने वाले बच्चों के साथ होगा।

इसी प्रकार यह चिंता व्यक्त करती है कि बहुत से गांव में ऐसे स्कूल हैं जहां पर केवल दो ही शिक्षक हैं। इस कारण से वहां अच्छी पढ़ाई नहीं होती है। इसके समाधान के लिए शिक्षकों की संख्या बढ़ाने की बजाय उन स्कूलों को बंद करने की सिफारिश की गई है। ऐसा भी कहा गया है कि एक स्कूल कांप्लेक्स बनाया जाएगा जिसमें जिले में एक बड़ा स्कूल और उसके इर्दगिर्द निचली कक्षाओं के स्कूल होंगे। ये सब एक ही स्कूली प्रशासन के नियंत्रण में रहेंगे। स्कूल बंद होने पर बच्चों को इस कांप्लेक्स में पढ़ने की सुविधा मिलेगी। स्कूल कांप्लेक्स में सरकारी व निजी स्कूलों में कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। इससे स्कूल पहुंच से दूर होंगे क्योंकि कांप्लेक्स के सारे स्कूल गांव के समीप नहीं होंगे। इस पर भी चिंता व्यक्त की गई है पर समाधान बस या ट्रांसपोर्ट के अन्य साधन मुहैया कराना नहीं बल्कि इसमें भी नए तरीके बनाने पर जोर दिया गया है जैसे कि वार्किंग ग्रुप्स अर्थात कई बच्चे एक साथ जाएंगे तो उन्हें थकान महसूस नहीं होगी। हालांकि यह बात सभी समझ सकते हैं कि यदि ऐसे समूह बनाने हैं तो वह बच्चे खुद ही बना सकते हैं और आमतौर से बना भी लेते हैं। यदि स्कूल दूर हुए तो बहुत से बच्चे और विशेषकर लड़कियां स्कूल नहीं जा पाएंगे।

शिक्षकों की कमी को शिक्षकों की भरती करके पूरा करने का विचार नहीं है बल्कि स्कूल कंपलेक्स में किसी भी शिक्षक को किसी भी स्कूल में पढ़ाने की जिम्मेदारी मिल सकती है, यहां तक कि निजी स्कूल में भी। मतलब कि सरकार से तनख्वाह लेने वाला शिक्षक निजी स्कूल में पढ़ाएगा।

चिंता तो खराब छात्र शिक्षक अनुपात तथा सकल नामांकन अनुपात (एक आबादी के कितने बच्चे दाखिला लेते हैं) पर भी जताई गई है और उसका समाधान स्कूल बंद कर कांप्लेक्स बनाना जहां पर एक ही शिक्षक अलग–अलग स्कूल में जाएंगे है। साथ ही यह प्रस्ताव भी है कि समाज में वह लोग जो शिक्षक नहीं है पर पढ़ाना चाहते हैं उन्हें भी सेवा का मौका दिया जाएगा और वह बच्चों को पढ़ा सकते हैं। दूसरा नेशनल ट्यूटर प्रोग्राम जिसमें बड़ी क्लास के बच्चों को छोटी क्लास के बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाएगा। शिक्षकों की बात करते हुए शिक्षा नीति यह भी कहती है कि वर्तमान शिक्षक बीएड कोर्स करके आते हैं वह पर्याप्त नहीं है और बेहतर 4 वर्षीय बीएड कोर्स आवश्यक होगा। अभी के शिक्षकों की गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए अप्रशिक्षित लोगों को स्कूलों में पढ़ाने का मौका दिया जाएगा! जाहिर है इस प्रकार के प्रयोग सरकारी स्कूलों में ही होंगे और निजी स्कूलों में शिक्षक ही पढ़ाएंगे चाहे वह सरकारी स्कूल के ही क्यों ना हो। यानी अगर आपके पास पैसे होंगे तो आप स्कूली शिक्षा ले सकेंगे अन्यथा स्कूल में दाखिला लेकर भी अच्छी शिक्षा मिलना दूर की बात होगी।

नामांकन अनुपात को ठीक करने के लिए पहुंच में अच्छे स्कूलों को बनाने की बात करने की बजाए दूरस्थ शिक्षा (ओपन डिस्टेंस लर्निंग) जिसका आजकल प्रचलित तरीका है ऑनलाइन शिक्षा, को बढ़ावा देने की बात की जा रही है। ऑनलाइन शिक्षा पिछले 2 वर्ष में सभी ने भुगती है और देखा है कि किस प्रकार आमजन शिक्षा से दूर हो गए हैं।

यह नीति इस बात पर भी चिंता व्यक्त करती है कि निजी स्कूल केवल मुनाफाखोरी करते हैं और शिक्षा को व्यापार बना रखा है, तथा इसमें बहुत भ्रष्टाचार है। और समाधान– यदि शिक्षा में निजी निवेश किया जाएगा तो वह पूरी पारदर्शिता से होना चाहिए, खर्च का लेखा–जोखा वेबसाइट पर डाला जाना चाहिए, मुनाफे को किसी अन्य शिक्षा योजना में खर्च किया जाना चाहिए। पहली चीज तो मुनाफा कमाने पर तो कोई रोक है ही नहीं। दूसरे, नियंत्रण के नाम पर केवल पारदर्शिता। हम सभी जानते हैं कि किस प्रकार पूंजीपति अपनी बैलेंस शीट बनाते हैं। यहाँ आपको सिर्फ दिखाना है कि आपका मुनाफा (यदि वह भी दिखाया गया है तो) शिक्षा में ही कहीं खर्च किया गया है।

स्कूली शिक्षा में वोकेशनल कोर्सों पर जोर दिया गया है और उन्हें बाकी कोर्सों के समकक्ष रखा गया है। ऐसा कहा गया है कि छठी क्लास से ही बच्चे कुछ मौज मस्ती के कोर्स जैसे बढ़ई गिरी, बागवानी आदि करेंगे। यदि संसाधन नहीं होंगे तो बच्चों को इस प्रकार के कोर्सों में धकेला जाएगा। इसका एक मतलब तो यह हुआ कि छठी क्लास से ही बच्चे की लाइन तय की जा रही है, जबकि अनुभव बताता है 11वीं क्लास में भी बच्चे कई बार स्पष्ट नहीं होते हैं। दूसरे, यह बच्चों को कुशलता तो देगा पर ज्ञान नहीं। आप बिजली का तार लगा सकेंगे पर बिजली क्या होती है कैसे बनती है इत्यादि नहीं सीखेंगे। यह बड़े देसी विदेशी कॉरपोरेट घरानों के लिए कुशल मजदूर पैदा करने का तरीका है, और जाहिर है इसकी भी एक बहुत छोटी संख्या ही दरअसल नौकरी पा पाएगी। यदि आप निजी स्कूलों में पढ़ रहे होंगे तो आप अर्थपूर्ण शिक्षा ले सकते हैं और भविष्य में बेहतर समझे जाने वाले पेशे जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, टीचर आदि बन सकते हैं। अन्यथा कम ज्ञान पाये कुशल मजदूर ही बनेंगे।

इस तरह से हम देख सकते हैं कि किस तरह से स्कूली शिक्षा मुनाफाखोरी के हवाले की जा रही है और केवल पैसे वाले ही अच्छी अर्थपूर्ण शिक्षा ले सकेंगे। यही हाल उच्च शिक्षा का भी होगा।

शिक्षा नीति का नजरिया है कि आने वाले 15 साल में भारत में कालेजों की संख्या लगभग एक तिहाई कर दी जाए। शिक्षा नीति का प्रस्ताव है कि कालेजों को स्वतंत्र विश्वविद्यालय का दर्जा दिया जाए ताकि वह अपनी डिग्री खुद दे सके और अपने कोर्स आदि तय कर सकें। बहु विषयक (मल्टीडिसिप्लिनरी) कोर्स करने होंगे। पर साथ ही साथ कालेजों को वित्तीय स्वायत्तता भी धीरे–धीरे प्राप्त करनी होगी। अर्थात कालेजों की ग्रांट धीरे धीरे कम की जाएगी और कालेजों को अपने खर्चे स्वयं निकालने होंगे। विश्व बैंक के प्रस्तावों में इसके लिए जो रास्ते सुझाए गए हैं उनमें हैं एक तो कॉलेज अपनी फीस बढ़ाएं या सेल्फ फाइनेंसिंग कोर्स शुरू करें। दूसरा अपनी संपत्ति से धन अर्जन करें– अर्थात अपने मैदान किराए पर दें, लाइब्रेरी में यूजर चार्ज लगाएं, कैंटीन आदि निजी ठेकेदारों को दिए जाएं, खाली कमरे व अन्य चीजों को भी किराए पर दिया जा सकता है इत्यादि। और तीसरा है कि किसी अन्य पार्टी से निवेश प्राप्त किया जाए। जाहिर बात है कि निवेश करने वाली पार्टी मुनाफे के लिए निवेश करेगी और ऐसे कोर्सों को बढ़ावा देगी जो व्यावसायिक होंगे और उनकी खर्चे ज़ाहिर तौर पर बढ़ी हुई फीसों से ही आएंगे।

साथ ही टेक्नोलॉजी व डिजिटल इंडिया के नाम पर ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा है। यूजीसी ने मिश्रित शिक्षा (ब्लेंडेड एजुकेशन) के नाम पर प्रस्तावित किया है कि कुल शिक्षा का चालीस प्रतिशत ऑनलाइन होना चाहिए। यह प्रस्ताव पहले तो इस बात को मान कर चलता है के सभी छात्रों के पास ऑनलाइन शिक्षा हेतु उचित सुविधाएं जैसे उपकरण, सही नेटवर्क, समुचित डाटा व व्यक्तिगत कमरे हैं। यह मान्यता अपने आप में ही गलत है और इस कारण से प्रस्ताव मूल रूप से व्यावहारिक नहीं है। दूसरे ऑनलाइन शिक्षा दुनिया भर में सफल नहीं रही है। विकसित देशों में भी देखा गया है कि ऑनलाइन शिक्षा में दाखिला लेने वाले अधिकांश छात्र कोर्स पूरा नहीं कर पाते हैं। इसके अनेक कारण है। सबसे प्रमुख कारण है आपस में बातचीत का अभाव। शिक्षक और छात्र के बीच में कोई सीधी बातचीत नहीं है जिसके कारण शिक्षक यह समझ नहीं पाएगा कि छात्र उसकी बात समझ पा रहे हैं या नहीं या किस तरह से अपनी बातों को छात्रों के समझ पाने के अनुसार बदले। अनेक जगह तो रिकॉर्डेड वीडियो लेक्चर ही चलाया जाते हैं। दूसरे छात्र आपस में बातचीत नहीं करते हैं, आपस में शिक्षा व अन्य विषयों पर कोई विमर्श नहीं होता है वह अन्य गतिविधियां नहीं हो पाती हैं जिसके कारण ना तो पढ़ाई में और ना ही समग्रता से छात्रों का विकास हो पाता है। और भारत जैसे देश में सुविधाओं के अभाव में तो बहुत से बच्चे इस प्रकार से पढ़ ही नहीं पाते हैं और ना पढ़ पाएंगे। कई क्षेत्रों में नेटवर्क तो दूर, फोन को चार्ज करने के लिए भी बिजली कई दिनों तक नहीं आती है। उपकरण व डाटा पर खर्च तो अलग बात है।

चार साला स्नातक कोर्स (एफ॰वाई॰ यू॰पी॰) भी साधारण पृष्ठभूमि से आए छात्रों पर एक प्रकार से हमला है। जो संरचना एफ॰वाई॰यू॰पी॰ की बनाई गई है उसमें अनेक बाहर निकलने के बिंदु (एग्जिट प्वाइंट) है। पहला साल पूरा करने के बाद सर्टिफिकेट, दूसरे साल के बाद डिप्लोमा, तीसरे के बाद स्नातक डिग्री व चौथे के बाद ऑनर्स डिग्री मिलेगी। अभी की पाठ्यक्रम संरचना के अनुसार पहले 3 सेमेस्टर अर्थात डेढ़ वर्ष छात्र वही सीखेंगे जो उन्होंने 12वीं तक सीखा था। क्योंकि सभी छात्रों को सभी विषय पढ़ाए जाएंगे चाहे वो उनके पास 12वीं में थे या नहीं या चाहे वह उस विषय में डिग्री करना चाहते हैं या नहीं। इसलिए विषय बहुत हल्के रखे जाएंगे। इसका मतलब है कि सर्टिफिकेट कोर्स करने वाले छात्र दरअसल कुछ नया नहीं सीखेंगे और बाजार में सभी को पता होगा कि सर्टिफिकेट करने वाले छात्र कितने सक्षम हैं, उसी के अनुसार उनकी कद्र होगी।

इसके साथ ही एक एबीसी योजना– एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट भी लाई गई है। हर कोर्स पूरा करने पर कुछ क्रेडिट छात्रों को मिलेंगे। और यह क्रेडिट आपके क्रेडिट बैंक में जमा हो जाएंगे। इसके बाद आप यदि को छोड़ते हैं तो कभी भी और कहीं भी उन क्रेडिट को इस्तेमाल करके आगे बढ़ सकते हैं। यह बताया जा रहा है कि जो लोग पहले वर्ष में चले गए हैं वह बाद में फिर कभी भी आकर कितने भी साल बाद वहीं से शुरू कर सकते हैं क्योंकि उनके क्रेडिट जमा है। यह नहीं बताया जा रहा है कि आखिरकार यह छात्र पहले या दूसरे वर्ष के बाद बाहर क्यों जाना चाहते हैं? अधिकांशतः वह लोग ही बाहर जाएंगे जिनके ऊपर आर्थिक दबाव होगा। एक बार नौकरी या कमाई

(शेष पृष्ठ 6 पर)

अमेरिका इजरायल यूएई भारत समझौता

पिछले दरवाजे से खेती कारपोरेट को सौंपने का षड्यंत्र

अनिल दुबे

''उत्तम खेती मध्यम बान, निषिध चाकरी भीख निदान''। अवध क्षेत्र के लोककवि माघ का यह दोहा तत्कालीन भारत में कृषि के महत्व को बताता है। उस काल में खेती उत्तम व्यवसाय जरूर था, लेकिन वर्तमान में किसी भी देश के सिर्फ कृषि पर निर्भर रहना खुदकुशी के समान है। भारत जैसे बड़ी जनसंख्या वाले देश के लिए कृषि के साथ घरेलू जरूरतों को पूरा करने वाला औद्योगिक उत्पादन भी जरूरी है। शासक वर्गों की पार्टियों ने इस पर कभी ठोस पहल नहीं की। परिणामस्वरूप आज कृषि और किसान गंभीर संकट में हैं, लेकिन आरएसएस–भाजपा सरकार जिस रास्ते से कृषि पर सीधे निर्भर देश की आधी से अधिक आबादी को बिना स्थाई रोजगार दिए खेती से दूर करना चाहती है उसके भयावह दुष्परिणाम होंगे।

भारत विभिन्न संस्कृतियों, सभ्यताओं का ही देश नहीं है बल्कि ऐसा देश भी है जहां विविधताओं से भरी उर्वरक भूमि, जैविक व प्राकृतिक संपदा, खूबसूरत भौगोलिक व पर्यावरणीय परिस्थिति, 3 मौसम और उससे जुड़े फसल चक्र जहां देश के काफी बड़े हिस्से में कम से कम 2 अन्यथा 3 फसलें पैदा की जा सकती हैं। गेहूं, चावल, मोटे अनाजों, दलहनी व तिलहनी फसलें, सब्जियां, सभी तरह के फल, फूल, मसाले, पशु, मछली, कुक्कुट पालन और दुग्ध उत्पादन में देश दुनिया में उंचे स्थान पर है। खास बात यह है कि यह उपलब्धि किसानों के कठोर परिश्रम से होती रही है। अमेरिका व यूरोपीय देश अपने किसानों को कई सौ प्रतिशत की सब्सिडी देते हैं, जबकि हमारे देश में सरकारें लगातार कृषि क्षेत्र में संकट पैदा करती रही हैं।

दुनिया में कृषि योग्य सर्वाधिक भूमि भारत के पास है। भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 51% भूभाग कृषि योग्य है। 4% पर चारागाह, 21% पर जंगल और 24% भूमि ही पानी की कमी के कारण बंजर है, जिसे विकसित किया जा सकता है। सीआईए वर्ल्ड फैक्टबुक के अनुसार भारत में 17 लाख 53 हजार 694 वर्ग किलोमीटर भूमि पर खेती होती है, जबकि देश में कृषि योग्य भूमि 18 लाख 91 हजार 761 वर्ग किलोमीटर है। वहीं अमेरिका के पास 16 लाख 52 हजार 028 वर्ग मील कृषि योग्य भूमि है जबकि चीन के पास 10 लाख 84 हजार 461 वर्ग किलोमीटर खेती योग्य भूमि है। देश में बड़े पैमाने पर गेहूं, चावल, दालों, तिलहनों, फल, सब्जी, दूध, मांस उत्पादन के बावजूद एक बड़ी आबादी को भरपेट भोजन उपलब्ध होना तो दूर वह कुपोषण का शिकार है। वर्ष 2021 के वैश्विक भूखमरी सूचकांक में भारत का स्थान पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल से भी नीचे 101वें स्थान पर है। केंद्र में सत्तारूढ़ आरएसएस–भाजपा सरकार ने गलथेथरई करते हुए संसद में भुखमरी सूचकांक फार्मूले को ही अस्वीकार कर दिया।

देश के किसान और कृषि वास्तव में संकट में हैं जिससे खाद्यान्न सुरक्षा को भी खतरा पैदा हो गया है, लेकिन सरकार उसका समाधान खेती को कारपोरेट कंपनियों के हवाले कर 60% किसानों और ग्रामीण आबादी को सस्ते श्रम में बदल देना चाहती है। कृषि को एक झटके में कारपोरेट के हवाले कर देने की मंशा से नरेंद्र मोदी सरकार ने संसद से 3 कृषि कानून पारित किए थे, लेकिन जुझारू किसानों के एक वर्ष तक चले देशव्यापी आंदोलन के आगे उसे घुटने टेकने पड़े। इससे सबक लेते हुए सरकार ने अब बड़े पैमाने पर नहीं बल्कि दूसरे देशों से समझौता कर खेती को कारपोरेट कंपनियों के हवाले करने की शुरूआत की है। इस दिशा में 14 जुलाई को 4 देशों की सरकारों– अमेरिका, भारत, यूनाइटेड अरब अमीरात और इजराइल ने नया समूह ''आई–2 यू–2''गठित करने के साथ ही कृषि समझौता किया है। इसके तहत भारत में एकीकृत कृषि फूड पार्क बनाए जाएंगे और यूएई समझौते के तहत 2 अरब डालर का निवेश करेगा।

कृषि, खाद्य सुरक्षा और ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग के लिए बने नए समूह की पहली वर्चुअल बैठक में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, अमेरिका के राष्ट्रपति जो बाइडेन, इजरायल के प्रधानमंत्री येर लापिद, और यूएई के राष्ट्रपति मोहम्मद बिन जायेद अल नह्यान उपस्थित थे। ''आई 2 यू टू'' ने खाद्य सुरक्षा संकट, स्वच्छ ऊर्जा के अलावा दीर्घकालिक व अधिक विविधता पूर्ण खाद्य उत्पादन और खाद्य आपूर्ति प्रणाली सुनिश्चित करने के उपायों पर चर्चा की। समूह ने अपने साझा बयान में कहा है कि भारत भर में बनाए जाने वाले फूड पार्क संबंधी परियोजना के लिए भारत उपयुक्त भूमि उपलब्ध करवाएगा और उससे किसानों को जोड़ेगा। कृषि फूड पार्क के लिए अमेरिका और इजराइल से निजी क्षेत्रों को आमंत्रित किया जाएगा और उनकी विशेषज्ञता का लाभ उठाया जाएगा। संयुक्त बयान में कहा गया है कि इस निवेश से फसल उत्पादन अधिक से अधिक होगा और इससे दक्षिण एशिया व पश्चिम एशिया में खाद्य सुरक्षा से निपटा जा सकेगा।

अमेरिकी राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार जैक सुल्लीवन के अनुसार ''भारत हिंद प्रशांत क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है और राजनीतिक रूप से अहम देशों में शामिल है। इसलिए भारत को हमारी रणनीति में मुख्य भूमिका निभानी चाहिए। उन्होंने कहा भारत के पश्चिम एशिया, खाड़ी देशों और इजराइल के साथ बहुत लंबे समय से अच्छे संबंध हैं। अमेरिका इजराइल को क्षेत्र में अपने रिश्ते मजबूत करने में मदद कर सकता है। ठीक उसी तरह भारत भी अपनी भूमिका निभा सकता है। भारत, इजराइल, यूएई और अमेरिका साथ मिलकर ज्यादा खाद्यान्न पैदा कर सकते हैं। इससे खाद्यान्न सुरक्षा की चुनौती से निपटने में मदद मिलेगी। भारत और इजराइल तकनीक व उद्यमिता के हब के रूप में काम करेंगे''। खेती को कारपोरेट कंपनियों के हवाले करने का उद्देश्य कृषि कानूनों से हासिल न कर पाने के बाद आरएसएस–भाजपा सरकार वैश्विक समझौतों की आड़ में विदेशी कंपनियों के हाथ में खेती और किसानों का भविष्य सौंप रही है।

दरअसल दुनिया के तमाम संपन्न देश जहां विभिन्न फसलों की खेती नहीं हो सकती, उनके बाजारों को खाद्यान्नों के साथ ही बेहतरीन किस्म के फल, सब्जियां, फूल, औषधीय जड़ी बूटियों और मसालों की भी जरूरत है। ऐसे में भारी मुनाफे का लालच बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भारत के कृषि क्षेत्र में निवेश एक बड़ा आकर्षण है। भारत में कृषि योग्य भूमि का विशाल क्षेत्र, अत्यधिक उर्वरक व जैव–विविधता से संपन्न और बहु फसलीय पर्यावरण के कारण यहां बड़े पैमाने पर कृषि उत्पादन संभव है। साथ ही कृषि उपकरणों, बीज, खाद, फर्टिलाइजर, केमिकल का भी एक बड़ा बाजार है। भारत के साथ अमेरिका, इजराइल, यूएई का यह समझौता अभी भले ही मात्र 2 अरब डालर का हो, लेकिन भविष्य में ऐसे वैश्विक करार और बड़े पैमाने पर देखे जाएंगे। छिटपुट तौर पर कई राज्यों में देसी व विदेशी कारपोरेट कृषि क्षेत्र में उतर चुके हैं।

आरएसएस–भाजपा सरकार जिस तरह रेलवे, बीमा, बैंक, दूरसंचार, रक्षा उत्पादन सहित विभिन्न क्षेत्रों के सार्वजनिक उपक्रमों का अंधाधुंध निजीकरण कर रही है। उसी तर्ज पर वह कृषि संकट के समाधान के नाम पर अब तक अछूते पड़े खेती के क्षेत्र को कारपोरेट कंपनियों के लिए खोलना चाहती हैं। केंद्रीय कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर ने 22 जुलाई को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद में ''भारतीय कृषि का देश और वैश्विक समृद्धि में योगदान'' विषय पर आयोजित कार्यक्रम में कहा कि खेती में किसान की लागत कम हो, उसे तकनीक का समर्थन हो, किसानी में निजी निवेश के दरवाजे खुले हों, किसान नगद फसलों की ओर जाएं, बाजार की उपलब्धता हो, उसका शोषण ना हो। ऐसी सरकारी व्यवस्था होनी चाहिए और इसे सामाजिक दृष्टि से भी अपनाया जाना चाहिए। तोमर ने कहा कि सरकार ने ऐसी योजनाएं बनाई हैं। कृषि में निजी निवेश और टेक्नालॉजी के दरवाजे खोले हैं। भारत की साफ नीति व नीयत के कारण वैश्विक मंचों पर देश की साख बढ़ी है।

कार्यक्रम की खासियत यह थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह दत्तात्रेय होसबोले भी उपस्थित थे। संघ परिवार का स्वदेशी का नारा अब बीते दिनों की बात हो गई है। संघ का अनुषांगिक संगठन भारतीय किसान संघ कृषि संकट के समाधान का रास्ता निजी क्षेत्र का पूंजी निवेश मानता है। कार्यक्रम में मारीशस के कृषि उद्योग व खाद्य मंत्री मनीष गोविंद, वियतनाम कृषि इंस्टीट्यूट के महानिदेशक बुई ची बुउ सहित अनेक देशों के कृषि वैज्ञानिक भी उपस्थित थे। हाल के वर्षों में भारत फल और सब्जियों के उत्पादन में दुनिया में दूसरे स्थान पर पहुंच गया है और विश्व उत्पादन में उसकी लगभग 12% की हिस्सेदारी है। कृषि मंत्री के वक्तव्य में खेती में विदेशी पूंजी निवेश का रोड मैप है और सरकार ने दर्जन भर से अधिक राज्यों को एग्रो मेगा फूड पार्क के लिए चिन्हित किया है।

तोमर ने इससे पूर्व अक्टूबर 2021 में संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के तत्वाधान में आयोजित हॉर्टिकल्चर उत्पादों के अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम में कहा था कि चालू वर्ष के दौरान विदेशी फलों के लिए 8951 हेक्टेयर और देशी फलों के लिए 7154 हे. क्षेत्र को खेती के दायरे में लाया गया है। सरकार 10 विदेशी फलों और उच्च पोषण वाले 10 स्वदेशी फलों की पहचान कर उनकी खेती शुरू कराएगी। उन्होंने कहा कि बागवानी फसलों के लिए क्लस्टर विकास का दृष्टिकोण आवश्यक है और इसके लिए कार्यक्रम शुरू किए गये हैं। साईलो, वेयर हाउस और संग्रह स्थलों के निर्माण के लिए सरकार ने एक लाख करोड़ रुपए का कृषि इंफ्रा फंड शुरू किया है जहां छटाई, ग्रेडिंग इकाइयां, पैकिंग इकाइयां, कोल्ड चेन और प्राथमिक प्रसंस्करण केंद्र की सुविधाएं बढ़ाई जाएंगी। इसके लिए स्टार्टअप्स, वैल्यू चेन और कृषि अनुसंधान संस्थानों से साझेदारी की जा रही है।

वैश्विक महामारी कोरोना के बावजूद भारत का कृषि निर्यात 17.34 % बढ़ा है और सरकार ने 2030 तक फल और सब्जी में वैश्विक निर्यात में 10% की हिस्सेदारी का लक्ष्य बनाया है। केंद्रीय वाणिज्य सचिव डॉ अनूप वधावन ने 10 जून 2021 को कहा था कि 2020–21 के दौरान कृषि एवं संबद्ध उत्पादों का निर्यात बढ़कर 41.25 अरब डॉलर पहुंच गया है। खाद्यान्नों के साथ ही बागवानी फसलों, फल, सब्जियां, मसाले, मछली, कपास, चीनी, चाय, औषधीय जड़ी बूटियां, सूखे मेवे आदि कृषि उत्पाद इसमें शामिल हैं। उ.प्र. के वाराणसी, चंदौसी, लखनऊ, महाराष्ट्र के नागपुर, सोलापुर, नासिक के अलावा आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, गुजरात आदि राज्यों से केला, सब्जियां, नारंगी, संतरे, अनार, आम, प्याज का निर्यात किया गया है।

नरेंद्र मोदी सरकार के 8 वर्षों के कार्यकाल के दौरान इजराइल के साथ व्यापार, रणनीति, रक्षा व कृषि क्षेत्र में तकनीकी सहयोग बढ़ा है। भारत की रुचि इजरायल की खेती को लेकर है जबकि वहां की कृषि तकनीक उपजाऊ जमीन न होने और कम पानी की खेती पर है। भारत के प्रमुख कृषि उत्पादक राज्य पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, ओडिशा, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, केरल हैं। इसके अलावा पूर्वोत्तर के राज्य जैविक खेती के क्षेत्र हैं। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक के कुछ इलाकों को छोड़कर अन्य राज्यों में पानी की प्रचुर मात्रा है। पानी के सही प्रबंधन से इस कमी को दूर कर जमीन उपजाऊ की जा सकती है।

कृषि संकट को समाप्त करने के लिए हिंदुत्ववादी मोदी सरकार खेती की लागत कम करने के लिए कृषि उपकरणों, बीज, खाद, बिजली, डीजल की कीमतें ना तो नियंत्रित करती है और ना ही सब्सिडी देती है। संकट का समाधान वह खेती को कारपोरेट को सौंप देने में देखती है। ऐसे में किसानों, कृषि मजदूरों व आम नागरिकों को आरएसएस–भाजपा सरकार के मंसूबों के प्रति जागरूक रहना होगा। सरकार को कृषि कानूनों को वापस लेना पड़ा था लेकिन अब वह पिछले दरवाजे से कारपोरेट कंपनियों को देश की कृषि क्षमता और किसानों की जमीन सौंप देने का षड्यंत्र रच रही है। समय रहते यदि उसे रोका नहीं गया तो किसानों के साथ ही देश में खाद्यान्न संकट के कारण इसकी बड़ी कीमत गरीब जनता को भी चुकानी पड़ेगी।

यूक्रेन : बदलता वैश्विक परिदृश्य

साम्राज्यवादी शक्तियों के तेज होते अंतर्विरोध तथा दुनिया में जनता पर प्रभाव

कमल सिंह

यूक्रेन में जारी युद्ध के साथ दुनिया नए मोड़ पर है। यूक्रेन की जनता 24 फरवरी से रूसी हमले के बाद से, तबाही और बरबादी से जूझ रही है। शिकार वह अमेरिका व अन्य यूरोपीय देशों के सैन्य संगठन नाटो (उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन) की साजिशों की भी है। इन्होंने ही रूस की घेराबंदी के लिए यूक्रेन की आंतरिक राजनीति में दखलंदाजी करके सत्ता पर काबिज वर्ग को प्रलोभित किया, युद्ध भड़काया और यूक्रेन के समर्थन के नाम पर घातक हथियारों की आपूर्ति कर रहे हैं।

परमाणु हथियारों के इस्तेमाल की धमकियां और तीसरे महायुद्ध की संभावनाओं की चर्चाएं आम हैं। स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट के अनुसार दस देश हैं, जिनके पास परमाणु बम हैं। उनमें रूस के पास 6200, अमेरिका के पास 5800, ब्रिटेन के पास 225, फ्रांस के पास 290, चीन के पास 320, भारत के पास 150, पाकिस्तान के पास 160, इजरायल के पास 90, उत्तरी कोरिया के पास 30–40 परमाणु बम हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के अंत में 6 अगस्त 1945 को अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा नगर पर 15 किलोटन वाला परमाणु बम गिराया गया था। इससे 1 लाख 46 हजार लोग मरे थे। उस समय वहां की कुल आबादी 3.45 लाख थी।

सोवियत संघ के विघटन और वारसा संधि के खात्मे के बाद अमेरिका ने नाटो का और अधिक विस्तार किया है। उसने 1999 में पूर्वी यूरोप के देश चेक गणराज्य, हंगरी और पोलैंड, 2004 में बुल्गेरिया, एस्टोनिया, लातविया, लिथुआनिया, रोमानिया, स्लोवाकिया, 2009 में अल्बानिया और क्रोएशिया, 2017 में मोंटेनेग्रो और 2020 में उत्तर मैसेडोनिया को इस सैन्य संधि में सम्मिलित कर लिया है। अब यूक्रेन को नाटो में सम्मिलित करने की कोशिश से भड़के इस युद्ध के दौरान फिनलैंड और स्वीडन को भी नाटो का सदस्य बनाने की प्रक्रिया जारी है। ये दोनों अभी तक नाटो और रूस के मध्य बफर देश रहे हैं। फिनलैंड के साथ तो रूस की 1340 किलोमीटर सीमा लगती है। यही नहीं, बाल्टिक सागर में सुरक्षा के नजरिए से भी रूस के लिए यह चिंता का सबब है। बाल्टिक सागर के किनारे स्थित कलिनिनग्राद में रूस का खास सैन्य अड्डा है। हाल ही में रूस ने यहां छद्म परमाणु मिसाइल हमले का एक अभ्यास किया था।

रूस–यूक्रेन युद्ध के साथ वैश्विक अर्थ व्यवस्था का संकट और गहरा हो गया है। रूस पर लगाए गए प्रतिबंधों की वजह से कोयला, तेल और प्रकृतिक गैस की आपूर्ति बाधित हुई है। खासतौर से यूरोपीय देशों में उद्योगों और आने वाली सर्दियों में घरों को गर्म रखने के लिए गम्भीर ऊर्जा संकट की स्थिति है। इसके अतिरिक्त खाद्यान्न संकट भी दुनिया के लिए चिंता का सबब बन गया है। दुनिया में गेहूं के कुल निर्यात में से 29 प्रतिशत गेहूं रूस और यूक्रेन से आता है। भारत के उत्तर प्रदेश और राजस्थान दो प्रांत के बराबर आकार और लगभग 4 करोड़ आबादी वाला यूक्रेन, दुनिया में कुल निर्यातित गेहूं का 10 से 12 फीसदी निर्यात करता है। वहां 2021–22 में तकरीबन 33 मिलियन मीट्रिक टन गेहूं का उत्पादन हुआ था। उसने इसमें से लगभग 20 मिलियन मीट्रिक टन गेहूं अन्य देशों को बेचा। अब, फसल की बरबादी तथा रूस व यूक्रेन से गेहूं के निर्यात न होने की स्थिति में खाद्यान्न मंहगाई बढ़ना तय है। इस कमी को पूरा करने के लिए जिन देशों से गेहूं खरीदा जाएगा वहां गेहूं महंगा होगा, इसकी झलक भारत में देखी जा चुकी है।

प्रभाव क्षेत्र के विस्तार के लिए रूस–अमेरिका का यह द्वंद्व, साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच जारी उस जंग का हिस्सा है,जो अफगानिस्तान में अमेरिका की हार के बाद वैश्विक व्यवस्था के पुनर्गठन के लिए जारी है। अमेरिका अपने नेतृत्व एकध्रुववीय विश्व की पुनर्स्थापना के लिए प्रयासरत है जबकि रुस और चीन बहुध्रुवीय विश्व को मजबूत करना चाहते हैं। रूस जारकालीन विशाल साम्राज्य का भी सपना संजोए है।

यूरोपीय सघं के देश, अमेरिका के दबाव तथा नाटो का सदस्य होने की स्थिति में यूक्रेन को हथियार तो दे रहे हैं, उनकी स्थिति सांप–छछूंदर जैसी है। ब्रिटेन के यूरोपीय संघ से बाहर हो जाने के बाद, यहां फ्रांस और जर्मनी मुख्य भूमिका में हैं। यूरोपीय देशों का रूस के साथ मुख्य अंतर्विरोध पूर्वी यूरोप के देशों के बाजार और संसाधनों को लेकर है। वे चाहते हैं वार्ता के जरिए समाधान के रास्ते से रूस को झुकाया जाए। युद्ध का विस्तार या इसे लम्बा खींचने में उनकी रुचि नहीं हैं, ऐसा करना उनकी अर्थ व्यवस्था के हित में नहीं होगा। ये देश नाटो के सदस्य जरूर हैं परंतु अमेरिका से स्वतंत्र नीति अपनाना चाहते हैं। बहरहाल, रूस के मुकाबले के लिए ये अमेरिका पर निर्भर हैं।

फ्रांस में तीन प्रमुख राजनीतिक दल (गठबंधन) सत्ता की दौड़ में हैं। इनमें से नेशनल रैली धुर दक्षिणपंथी दल है। वह रूस के साथ संबंधों के बिगाड़ के पक्ष में नहीं है। बेरोजगारी और महंगाई से परेशान फ्रांस में यूक्रेन से आने वाले शरणार्थियों को पनाह देने और यूक्रेन को हथियार देने का नेशनल रैली ने विरोध किया है। इसकी नेता मरिन ली पेन अप्रेल में हुए राष्ट्रपति पद के चुनाव में ला रिपब्लिक एन मोर्चे (गठबंठन) के प्रत्याशी इमैनुएल मैक्रों से हार गई हैं फिर भी, उनकी पार्टी ने नेशनल असेम्बली में बेहतर प्रदर्शन करके 89 स्थानों पर जीत दर्ज की है। वामपंथियों की संख्या नेशनल असेम्बली में दूसरे नंबर पर है, 131 सांसद चुनाव जीते हैं, जबकि 2017 में इनकी संख्या 45 थी। ये भी यूक्रेन पर मैक्रों की नीति के समर्थक नहीं हैं। यूक्रेन को हथियारों की आपूर्ति करने वाले इमैनुएल मैक्रों दूसरी बार राष्ट्रपति का चुनाव जरूर जीत गए परंतु 577 सीट वाले सदन में उनके गठबंधन को 245 स्थान पर ही कामयाबी हासिल हो सकी है। पिछली बार उनके सांसदों की संख्या 350 थी। फ्रांस में राष्ट्रपति आम जनता करती है और वह कार्यपालिका का प्रधान होता है। इसके बावजूद, नेशनल असेम्बली में स्पष्ट बहुमत के अभाव में महत्वपूर्ण फैसलों के लिए मैक्रों को वाम या दक्षिण में से किसी एक पर निर्भर होना होगा। बेरोजगारी, महंगाई के कारण फ्रांस की जनता में भारी असंतोष है। यूक्रेन से आ रहे शरणार्थियों की भारी तादाद और ऊर्जा के बढ़ते संकट ने समस्या को जटिल कर दिया है। मैक्रों वैसे तो अमेरिका पर निर्भरता कम करने तथा यूरोप के स्वतंत्र सैन्य संगठन के हिमायती रहे हैं।

जर्मनी में भी फ्रांस की तरह त्रिशंकु स्थिति है। जर्मनी की संसद (बुंडेस्टाग) के लिए 2021 के चुनाव में किसी एक दल को सपष्ट बहुमत न मिलने के कारण वहां भी तीन प्रमुख गठबंधन सोशल डेमोक्रेट (206), ग्रीन (118) और फ्री डेमोक्रेट (92) ने मिलकर सरकार बनाई है। सत्तारूढ़ क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी–क्रिश्चियन सोशल यूनियन 197 स्थान पर सिमट कर मुख्य विपक्षी दल है। इसके नेता फ्रेडरिक मर्ज ने हाल ही में यूक्रेन का दौरा किया। जर्मनी हालांकि यूक्रेन को हथियार देकर मदद कर रहा है परंतु भारी हथियार जो रूस के सुदूर भीतरी इलाकों तक मार कर सकें, देने में परहेज कर रहा है, जबकि फ्रेड्रिक मर्ज यूक्रेन को भारी हथियार देने के पक्ष में हैं। जर्मनी के चांसलर ओलाफ स्कोल्ज ने भारी हथियार देने से युद्ध के विस्तृत होने व अन्य देशों के भी इसमें संलिप्त होने की संभावना व्यक्त करते हुए, तीसरे विश्वयुद्ध व परमाणु युद्ध छिड़ सकने के प्रति सतर्क किया है। वे यूक्रेन और रूस के बीच समझौता वार्ता के पक्ष में है।

जर्मनी–फ्रांस–इटली के नेतृत्व में यूरोप (पुराना यूरोप) नाटो की सदस्यता के बावजूद अमेरिका से सवतंत्र नीति का पक्षधर है। रूस के साथ इनका अंतर्विरोध पूर्वी यूरोपीय देशों को लेकर है। वे वहां के बाजार और संसाधनों के प्रति लालायित हैं। अमेरिका की ''नए यूरोप'' की रणनीति का मकसद रूस–पश्चिम यूरोप के अंतर्विरोध को हवा देना है। वह समझता है यूरोपीय देशों का रूस के साथ जितना अंतर्विरोध बढ़ेगा, अमेरिका के साथ उनका अंतर्विरोध उतना ही कम होगा। वह यूक्रेन युद्ध को लंबा खींचकर रूस को कमजोर और यूरोपीय देशों को अपने अनुकूल करना चाहता है। इस तरह यूरोप के अलग ध्रुव के रुप में उभरने को रोकना चाहता है।

ब्रिटेन यूरोपीय संघ के देशों में अमेरिका के घुसने में सहायक है। वह समझता है कि अमेरिका की मदद से उत्तरी आयरलैंड प्रोटोकाल की बंदिशों को शिथिल करने में उसे मदद मिलेगी। उत्तरी आयरलैंड प्रोटोकॉल यूरोपीय संघ (ईयू) और यूनाइटेड किंगडम (यूके) के बीच लगातार तनाव का विषय बना हुआ है। ब्रिटेन चाहता है उसके और आयरलैंड गणराज्य के बीच व्यापार में यूरोपीय संघ की शर्तों से आजादी, जबकि यूरोपीय संघ से ब्रिटेन के हट जाने के बाद आयरलैंड गणराज्य यूरोपीय संघ का सदस्य है, उत्तरी आयरलैंड ब्रिटेन के अंतर्गत है। यूरोपीय संघ के देशों में एकीकृत बाजार व मुक्त आवागमन की व्यवस्था है।

चीन सिर्फ हिंद–प्रशांत क्षेत्र में ही अमेरिका के लिए चुनौती नहीं है। अमेरिका और चीन के बीच व्यापारिक युद्ध (ट्रेड वार) भी चल ही रहा है। चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना, समाजवादी व्यवस्था को राजकीय पूंजीवादी व्यवस्था में बदला गया। ''खुले दरवाजे की नीति'' के जरिए अमेरिका और अन्य पूंजीवादी देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आमंत्रित किया गया। मुनाफा बढ़ाने की गरज से ये कंपनियां सस्ते श्रम से यहां माल तैयार करवाकर दुनिया में बेचने लगी। इस तरह से चीन ''दुनिया के वर्कशॉप'' में तब्दील होता गया। इस प्रक्रिया में पूंजी और विदेशी मुद्रा का अर्जन हुआ। चीन में विकसित पूंजीवादी अभिजात्य वर्ग, जिसमें चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेता और नौकरशाह शामिल थे, इस शोषण और मुनाफे की लूट में भागीदार बने। शासक वर्ग ने यहां अब उच्च तकनीक और पूंजीगत माल के उत्पादन पर ध्यान दिया। सेना का आधुनिकीकरण और सशक्तिकरण किया। जमा पूंजी का उपयोग करके अपने उद्योगों के लिए पेट्रोलियम उत्पादों और खनिजों को खरीदा। अपने यहां तैयार माल को दुनिया के बाजारों में बेच कर भारी मुनाफा कमाना शुरू किया। उन्होंने रूस में पेट्रोलियम की खोज और मध्य एशिया में खनिज दोहन के अलावा पश्चिम एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में बड़े स्तर पर पूंजी निवेश करने की शुरुआत की। स्थिति यह है कि लैटिन अमेरिका, जिसे अमेरिका का पिछवाड़ा कहा जाता है, चीन वहां सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। उसने रूस और मध्य एशियाई देशों के साथ अपने आर्थिक संबंध घनिष्ठ किए हैं। वहां प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में निवेश किया है और उन्हें तैयार माल की आपूर्ति कर रहा है। बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) के माध्यम से बड़े पैमाने पर निवेश कर चीन अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर रहा है। दुनिया के सकल घरेलू उत्पाद में अमेरिका का योगदान 24 प्रतिशत है। उसके बाद चीन का ही नंबर आता है, जिसका सकल घरेलू उत्पाद 17 प्रतिशत है। चीन सिर्फ आर्थिक क्षेत्र में ही अमेरिका का मुख्य प्रतिस्पर्धी नहीं है, वह सैन्य क्षेत्र में भी चुनौती है। हिंद प्रशांत क्षेत्र में उसने जवाबी व्यूहबंदी कर ली है। महत्वपूर्ण रणनीतक ठिकानों, बंदरगाहों पर उसकी उपस्थिति है। अफ्रीकी श्रंग के देश जिबूती में चीन का पहला सैन्य अड्डा है।

दुनिया निरंतर बदल रही है। यह परिवर्तन सीधी रेखा में नहीं, घुमाव–फिराव के साथ है, परिवर्तन की गति ऊपर–नीचे, आगे–पीछे होती रहती हैं। इसके बावजूद परिवर्तन की दिशा यही है कि साम्राज्यवाद लगातार पतनोन्मुख है। साम्राज्यवाद के अंतर्विरोध और उसका संकट लगातार गहरा हो रहा है। साम्राज्यवाद और शोषित देशों का टकराव लगातार बढ़ रहा है। विकसित पूंजीवादी देश भी आर्थिक–राजनीतिक संकट और अस्थिरता के दौर में हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद दुनिया में मजदूर वर्ग के संघर्ष और शोषित राष्ट्रों में आजादी की लड़ाई तेज हुई। साम्राज्यवादी रूस में मजदूर वर्ग ने क्रांति कर मजदूर वर्ग का राज कायम किया। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अनेक देश आजाद हुए। वे पूंजीवाद की जगह समाजवाद की दिशा में बढ़े। मानवता ने युद्ध व शोषण की व्यवस्था की जगह समता व भेदभाव रहित समाज की दिशा में कदम बढाये़।

(शेष पृष्ठ 8 पर)

'अपराध और पूर्वाग्रह'

दिल्ली के जहांगीरपुरी इलाके में मुसलमानों के बीच भय की स्थिति की जनहस्तक्षेप द्वारा जांच

(जनहस्तक्षेप की टीम ने जहांगीरपुरी में मुसलमानों को पुलिस द्वारा निशाना बनाये जाने तथा उनमें व्याप्त भय की स्थिति की जांच की। जांच दल में विकास बाजपेयी (संयोजक जनहस्तक्षेप), चंदन, हरेंद्र, पंकज और रूपक (सभी जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में शोधकर्ता) शामिल थे। हम यहां जनहस्तक्षेप द्वारा 9 जुलाई 2022 को प्रैस क्लब में जारी प्रैस विज्ञप्ति कासंक्षिप्त अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं।)

इस साल 16 अप्रैल को जहांगीरपुरी इलाके, विशेष रूप से इसका सी ब्लॉक सांप्रदायिक घटनाओं से दहल गया था, जब विश्व हिंदू परिषद से जुड़े लोगों ने 'हनुमान जयंती' के अवसर पर एक जुलूस निकाला था।

अमूमन तात्कालिक शोरगुल और उठा पटक के शांत हो जाने के बाद इस तरह की घटनाओं और उनसे होने वाले मध्य व दीर्घकालीन परिणामों में सार्वजनिक निगाह और रुचि शिथिल हो जाती है, जबकि हकीकत यह है की इस तरह की घटनाओं के पीड़ित लोग लंबे समय तक उत्पीड़न का बोझ झेलते रहते हैं। इन सांप्रदायिक घटनाओं के उपरांत कई रिपोर्टें आयीं जिनमें जहांगीरपुरी के लोगों, विशेषकर वहाँ मुसलमानों में व्याप्त निरंतर भय व असुरक्षा की ओर इशारा किया।

इन रिपोर्टों को ध्यान में रखते हुए जनहस्तक्षेप ने स्थानीय मुस्लिम समुदाय के बीच व्याप्त कथित भय और उत्पीड़न की तथ्यपरख जांच करने का निर्णय लिया। इसके साथ ही हमने इस बात की पड़ताल की कि क्या पुलिस मुस्लिम समुदाय को सांप्रदायिक झगड़े के लिए प्रमुखतः जिम्मेदार मानकर उन्हें विशेष रूप से निशाना बना रही है। इस प्रयोजन से जनहस्तक्षेप की एक पाँच सदस्यीय जांच टीम रविवार 19 जून को जहांगीरपुरी गई और क्षेत्र के कुछ प्रभावित परिवारों,आम लोगों तथा पुलिस अधिकारियों से मुलाकात की।

हम यहाँ इस रिपोर्ट के प्रमुख बिन्दुओं को इंगित कर रहे हैं।

जंहागीरपुरी के सी ब्लॉक के अधिकांश निवासी बंगला भाषी मुसलमान हैं। कई घरों में या जिनके साथ हमने सड़क पर बात की, जिनमे कुछ हिन्दू भी सम्मिलित हैं, उत्तरदाताओं ने बताया कि या तो खुद उन्हें अन्यथा उनकी पिछली पीढ़ी को पूर्ववर्ती इंदिरा गांधी सरकार द्वारा 1970 के दशक की शुरुआत में यमुना पुश्ता के इलाके की बस्तियों से इस क्षेत्र में पुनर्वासित किया गया था। अधिकांश उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके पास अपने घरों के स्वामित्व के उचित दस्तावेज मौजूद हैं।

अंतरसामुदायिक संबंध

लोगों ने बताया कि 16 अप्रैल 2022 को हुई झड़प क्षेत्र में अपनी तरह की पहली घटना थी। हिंदू और मुस्लिम दोनों संप्रदाय के लोगों ने बताया कि जुलूस में शामिल लोग निश्चित रूप से स्थानीय नहीं थे। स्थानीय मुसलमानों और कुछ हिंदू परिवारों ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि हाल की गड़बड़ी के बावजूद क्षेत्र में दोनों समुदायों के बीच कोई तनाव नहीं है। जहांगीरपुरी के गली नंबर 6 में केवल दो हिंदू परिवारों रहते हैं जो कबाड़ी का काम करते हैं। उनमें एक परिवार के सदस्य ने बताया कि – ''हमारे पड़ोसी और हम एक–दूसरे के त्यौहारों और पारिवारिक समारोहों में भाग लेते हैं। स्थानीय मुसलमानों और हिंदुओं के बीच तनाव की सारी बातें निराधार हैं।''

क्षेत्र में व्याप्त तनाव

लोगों ने इस बात को बार बार स्पष्टता से दोहराया कि इस वर्ष पहली बार इस क्षेत्र में हनुमान जयंती जुलूस का आयोजन किया गया था। उन्हें याद नहीं था कि ऐसा कोई जुलूस पहले कभी निकाला गया हो।

मुसलमान निवासियों ने बताया कि पुलिस द्वारा मनमाने तरीके से उन पर हिंसा में शामिल होने के आरोप लगाकर गिरफ्तारियाँ करने के कारण मुस्लिम निवासियों में भय व्याप्त है। 16 अप्रैल 2022 को हुई हिंसा में शामिल लोगों का पता लगाने के नाम पर पुलिस कर्मी इलाके में आ रहे हैं और लोगों को धमका रहे हैं। इस भय का एक विशिष्ट कारण यह भी बताया गया कि क्षेत्र में सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत करने के नाम पर सी ब्लॉक में पुलिस चेक–पोस्ट स्थापित किए जाएँगे। कुछ स्थानीय लोगों के कथनानुसार ऐसे तीन चेक पोस्ट बनाए जाने हैं, जिसमें से हमारी टीम ने एक निर्माणाधीन चेक पोस्ट को स्वयं देखा।

कुछ विशिष्ट मामलों का विवरण

सद्दाम खान, उम्र 28 वर्ष, निवासी सी–452, सी ब्लॉक जहांगीरपुरी, गली नंबर 6, को पुलिस द्वारा दर्ज मामले में भगोड़ा घोषित किया गया है और घटना के बाद से वह घर से गायब है। सद्दाम की बड़ी बहन राहिला ने बताया कि पुलिस ने सद्दाम के 20 से 22 जुलाई तक आत्मसमर्पण नहीं करने पर उनके घर को गिराने की धमकी दी थी। सद्दाम के 66 वर्षीय पिता अहमद खान को दिल्ली पुलिस की अपराध शाखा ने रोहिणी स्थित अपने कार्यालय में पूछताछ के लिए बुलाया था, जहां उन्हें अक्सर पूरे पूरे दिन इंतजार कराया जाता था। राहिला और अहमद खान दोनों ने घटना में सद्दाम की संलिप्तता से इनकार किया व कहा कि उसका नाम शायद किसी अन्य आरोपी द्वारा पुलिस को दिया गया है।

इसी प्रकार एक और मामला गली नंबर 6 में रहने वाले 48 वर्षीय मोहम्मद जलालुद्दीन का भी है। उनकी मां जहांआरा, जिनकी उम्र 80 वर्ष से अधिक है,अपने बेटे के परिवार की मुसीबतों से और सादे कपड़े पहने पुलिसकर्मियों द्वारा बार–बार उनके घर आकार घंटो–घंटो तक ऊल जलूल की पूछ–ताछ कर के उन्हें बार–बार प्रताड़ित करने से परेशान हैं। बार–बार उनके घर पर पुलिस कर्मी महिला सदस्यों से घंटों तक पूछताछ करते रहे हैं। जब जलालुद्दीन गिरफ्तारी से बच रहा था, तब पुलिस ने उसके दो किशोरावस्था बेटों, सरफराज और सोहेल खान को उनकी नानी के घर से उठा लिया ताकि जलालुद्दीन के आत्मसमर्पण के लिए उसके परिवार पर दबाव बनाया जा सके। जलालुद्दीन की पत्नी और मां ने किसी भी रूप में सांप्रदायिक झड़प में उसकी संलिप्तता से इनकार किया।

हालांकि व्यक्तिगत मामलों की सत्यता–असत्यता की पुष्टि करना हमारे लिए संभव नहीं है, लेकिन लोगों से बात–चीत करके हमारी राय में यह मानने के कारण अवश्य हैं कि सबूतों के अभाव में भी पुलिस स्थानीय मुसलमानों पर हिंसा में शामिल होने का दोष मढ़कर जानबूझकर उन्हें निशाना बना रही है। उदाहरण के लिए, रोहिणी स्थित माननीय अतिरिक्त सेशन्स जज (ए०एस०जे) ने अपने दिनांक 1 जुलाई, 2022 के आदेश में इस मामले से संबन्धित प्राथमिकी संख्या 440/2022 में तीन आरोपियों के जमानत आवेदन के मामले में कहाः

जांच अधिकारी द्वारा दाखिल किया गया उत्तर दर्शाता है कि आज तक आवेदक/अभियुक्त व्यक्ति के संबंध में कोई साक्ष्य रिकार्ड में नहीं आया है और यह पता नहीं है कि किस आधार पर उनकी गिरफ्तारी की मांग की जा रही है। केवल इसलिए कि वे सी–ब्लॉक, जहांगीर पुरी के निवासी थे, उनकी संलिप्तता के बारे में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

जहांगीरपुरी हिंसा मामले में दर्ज प्राथमिकी

इस मामले में दर्ज प्राथमिकी संख्या 0440/2022 में कहा गया है कि "शोभा यात्रा शांतिपूर्ण तरीके से आगे बढ़ रही थी। शाम करीब छह बजे जब शोभा यात्रा सी ब्लॉक जामा मस्जिद पहुंची तो अंसार नाम का व्यक्ति अपने चार पांच साथियों के साथ आया और शोभा यात्रा में लोगों से बहस करने लगा। बहस जल्द ही नियंत्रण से बाहर हो गयी, जिसके परिणामस्वरूप दोनों पक्षों की ओर से पथराव हुआ, जिससे यात्रा में अफरा–तफरी मच गई।

शोभा यात्रा में भाग लेने वालों द्वारा खुल्लम–खुल्ला हथियार लहराए जाने, अथवा इस बिना अनुमति के कानूनी रूप से अवैध यात्रा निकालने का एफ०आई०आर में कोई उल्लेख तक नहीं है। माननीय ए०एस०जे कोर्ट ने 7 मई 2022 के अपने आदेश में कहाः

राज्य की ओर से यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि जिस अंतिम जुलूस के दौरान दुर्भाग्यपूर्ण दंगे हुए थे, उसे पुलिस की पूर्व अनुमति नहीं थी जिस कारण से यह जुलूस कानूनी रूप से अवैध था। यदि यही स्थिति थी तो एफ. आई.आर. में दर्ज बयान से ही पता चलता है कि इंस्पेक्टर राजीव रंजन के नेतृत्व में थाना जहांगीर पुरी के स्थानीय कर्मचारी, और साथ ही डी०सी०पी रिजर्व के अन्य अधिकारी भी उक्त अवैध जुलूस को रोकने के बजाय पूरे रास्ते उसके साथ–साथ चल रहे थे।

एफ०आई०आर में आगे कहा गया हैः

हनुमान जयंती के अवसर पर निकाली जा रही शांतिपूर्ण शोभा यात्रा पर कुछ असामाजिक तत्वों द्वारा पथराव और बंदूक से गोली दागे जाने के कारण सांप्रदायिक झड़पें हुईं, शांति भंग हुई और निजी संपत्ति को आग लगा दी गई। इससे ड्यूटी पर तैनात पुलिसकर्मियों और कुछ आम लोगों को चोटें आईं।

प्राथमिकी में तथ्यों को इस तरह दर्ज करने से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं:

1. जाहिर तौर पर घटना में शामिल हिंदू वे हैं जो जुलूस निकाल रहे थे।

2. पुलिस के कथनानुसार जुलूस शांतिपूर्ण था और निश्चित रूप से दंगा शुरू करने के लिए उसे जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता था। ऐसा इस बाद के बावजूद है कि हनुमान जयंती मनाने के लिए निकाले गए जुलूस ने मुस्लिम बहुल सी ब्लॉक सहित जहांगीरपुरी के इलाके में, जैसा कि पहले की रिपोर्टों में भी स्वीकार किया गया था, तीन चक्कर लगाए, और जुलूस के कई सदस्यों द्वारा हथियार लहराने के विडियो सार्वजनिक रूप से उपलब्ध हैं।

3. उपरोक्त कथित घटनाक्रम से यही प्रतीत होता है कि स्थानीय मुसलमान ही वास्तविक अपराधी थे और जुलूस के बाद हुई हिंसा और अन्य परिणामों के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार थे।

4. इसके विपरीत हिंसा में शामिल हिंदू पीड़ित पक्ष थे या अधिक से अधिक केवल हिंसक आक्रमण से अपनी रक्षा कर रहे थे।

मामले के तथ्यों के विरूपण को तर्कसंगत दर्शाने के लिए, आरोपी गुलाम रसूल उर्फ गुल्ली की ओर से निचली अदालत में दायर जमानत याचिका के जवाब में पुलिस कहती हैः

.. यह पता चला है कि वर्तमान दंगा मूल रूप से सीएए और एनआरसी, फिर उत्तर पूर्वी दिल्ली दंगों की नाराजगी का परिणाम था, जो देश के विभिन्न हिस्सों में कुछ दिन पहले रामनवमी की घटनाओं के बाद और बढ़ गया।

इस तरह की दलीलें पुलिस की ओर से 16 अप्रैल 2022 को हुई हिंसा के संदर्भ को विकृत करने के लिए प्रयास को दर्शाती हैं ताकि तथाकथित 'शोभा यात्रा' के आयोजकों को यात्रा के दौरान हुई हिंसक घटनाओं में संलिप्तता से मुक्त किया जा सके। जुलूस को "शांतिपूर्ण" और द्वेषरहित करार देने के बाद मुसलमानों को सांप्रदायिक हिंसा के खलनायक के रूप में प्रस्तुत करने का मार्ग स्वयं प्रशस्त हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप हिंसा की जांच के नाम पर स्थानीय मुसलमानों को लगातार डराना–धमकाना और अपराधियों को पकड़ने के नाम पर मनमानी गिरफ्तारियाँ करना एक तार्किक न्यायिक प्रक्रिया बन जाती है।

यह पुलिस द्वारा अदालत में दायर आरोप पत्र के विवरण से भी स्पष्ट होता है। मामले में दायर चार्जशीट के अनुरूप कुल आरोपित 37 लोगों में से 30 से अधिक मुसलमान हैं जबकि 7 हिंदू आरोपी हैं। इसके अतिरिक्त, मामले में कथित प्रमुख साजिशकर्ताओं में एक भी हिंदू शामिल नहीं है।

निष्कर्ष

ऊपर प्रस्तुत किए गए जनहस्तक्षेप जांच रिपोर्ट के परिणाम स्पष्ट रूप से बताते हैं कि 16 अप्रैल को जहांगीरपुरी में जो कुछ भी हुआ और उसके बाद जारी घटनाक्रम, देश में सांप्रदायिक उन्माद के समग्र डिजाइन के अनुरूप है। इस योजना का एक अनिवार्य पक्ष यह है कि बहुसंख्यक सांप्रदायिक ताकतें सांप्रदायिक हिंसा और तनावों को भड़काने का भरसक प्रयास करती हैं, और इस प्रयास के सफल हो जाने के बाद, अल्पसंख्यक समुदाय को प्रमुख आरोपी बनाकर उस समुदाय के आम सदस्यों को निशाना बनाया जाता है। ऐसा उनमें भय पैदा करने के साथ समाज में सांप्रदायिक विभाजन को और गहरा करने के लिए किया जाता है।

वर्तमान मामले में भी, हनुमान जयंती जुलूस क्षेत्र में अपनी तरह का पहला जुलूस था, जिसने क्षेत्र में तब तक बार–बार

(शेष पृष्ठ 6 पर)

रोहतासः जनयोद्धा का. जयप्रकाश राम का निधन

सीपीआई (एमएल) न्यू डेमोक्रेसी पार्टी के लिए ''ददन'' और आम जनता में ''साधु जी'' के नाम से प्रसिद्ध कामरेड जयप्रकाश राम का निधन 14 जुलाई को बीमारी के चलते हो गया। 15 जुलाई 2022 को पार्टी के अनेक साथियों और सैकड़ों लोगों ने अपने प्रिय जन यौद्धा को लाल सलाम के नारों से अंतिम विदाई दी। उपस्थित लोगों को संबोधित करते हुए पार्टी के नेताओं ने कहा का. राम एक जन योद्धा के रूप में जनता के दिलों में जिंदा रहेंगे। उनका संघर्षशील जीवन शोषित उत्पीड़ित जनता और किसानों को संघर्ष के लिए प्रेरणा देता रहेगा। कामरेड जयप्रकाश दमा के कारण कई वर्षों से बीमार चल रहे थे।

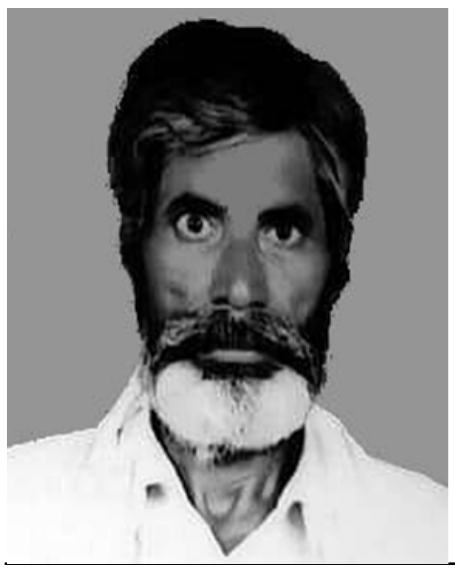

का. ददन उर्फे साधु जी सामंतों और वर्ग विरोधी तत्वों के लिए अत्यंत कठोर थे। 1990 में सीपीआई (एमएल) न्यू डेमोक्रेसी में शामिल होने के बाद उनके गांव बड़की अकोढ़ी में 17 अगस्त 1992 को सामंतवादी तत्वों ने मुंद्रिका राम, तेजाराम एवं नंदलाल राम की हत्या कर दी थी, जिसके पश्चात वह पेशेवर क्रांतिकारी बन गए और इलाके में राजनीतिक और संगठनात्मक कार्य शुरू किया। 15 वर्षों तक वह निरंतर पार्टी द्वारा सौंपे गए कार्यों को पूरी जवाबदेही के साथ करते रहे। दमा की बीमारी के कारण वह अपने गांव में परिवार के साथ रहने लगे थे। साथ ही करगहर प्रखंड में किसान आंदोलन को संगठित करने का काम करते रहे।

सीपीआई (एमएल) न्यू डेमोक्रेसी के नेतृत्व में 1990 से 2005 के बीच हुए सामंतवाद विरोधी किसान संघर्षों में उन्होंने एक कुशल योद्धा और संगठनकर्ता के रूप में अहम भूमिका निभाई। रोहतास जिले के करगहर, शिवसागर, दिनारा, अकोढी गोला, नोखा, कोचस, चेनारी आदि प्रखंडों में इस दौरान होने वाले भूमि संघर्षों पर सामंती गुंडा गिरोहों के हमलों का मुकाबला का. जयप्रकाश राम के नेतृत्व में किया गया। गांवों में सामंती ताकतों को उनके नेतृत्व में कई बार जनता ने धूल चटाई थी। इसके अलावा पंचपोखरी जैसे जघन्य जनसंहार का मुकाबला जनता ने उनके नेतृत्व में किया।

का. जयप्रकाश का जन्म एक भूमिहीन दलित परिवार में 2 मार्च 1958 को करगहर अंचल के ग्राम बड़की अकोढ़ी में हुआ था। उनके पिता सरयू राम सेना में नौकरी करते थे। वह बचपन से ही सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी लेने लगे थे। उनके गांव में सामंती दबदबा एवं उत्पीड़न चरम पर था, अतः सामंती शक्तियों के विरुद्ध उनके मन में गुस्सा बचपन से ही भर गया था। वह पार्टी में शामिल होने के पहले भी सामंती ताकतों के विरोध में ग्रामीण जनता को गोलबंद करने की कोशिश करते थे। पार्टी के संपर्क में आने के बाद वे इस दिशा में और सक्रिय हो गए। रोहतास के सामंतवाद विरोधी किसान आंदोलन में उनकी भूमिका के बार में कहना मुनासिब होगा– ''गुजरे हुए दशकों की दास्तान है तू, कौन कहता है कि बेजान है तू, तू जिंदा है जिंदा रहेगा, लोगों के दिलों में, किसी के मिटाए न मिटे वह पहचान है तेरी''।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

(पृष्ठ 2 का शेष)

के चक्कर में पढ़ने के बाद कितने छात्र वापस कुछ वर्ष बाद डिग्री करने आएंगे? यह संभावना तो नगण्य ही है। अभी इन एग्जिट प्वाइंट के ना होने से छात्र जबरदस्ती डिग्री कोर्स पूरा करते हैं पर अब इस उम्मीद में कि बाद में आ सकते हैं वह बाहर निकलेंगे। और इसके बाद उनका आना लगभग नामुमकिन होगा। दरअसल ये ड्रॉप आउट को कानूनी जामा पहनाने का एक तरीका है। और साधारण पृष्ठभूमि से आए छात्रों को अच्छी शिक्षा से बाहर करने का एक जरिया।

इसी प्रकार केंद्रीय विश्वविद्यालयों के प्रवेश के लिए एक केंद्रीय प्रवेश परीक्षा (सी॰यू॰ई॰टी॰) शुरू की गई है जिसमें सभी विश्वविद्यालयों के लिए एक परीक्षा होगी। अनेक केंद्रीय विश्वविद्यालयों ने इसे स्वीकार भी कर लिया है और इस बार के प्रवेश इसी परीक्षा के माध्यम से होंगे। हालांकि मेरिट आधारित प्रवेश प्रणाली में भी सरकारी स्कूल के बच्चे आगे नहीं बढ़ पाते हैं पर यह परीक्षा उस समस्या को हल करने की बजाय और गंभीर करने के लिए डिजाइन की गई है। इसमें पहली समस्या तो यह है कि अनेक विश्वविद्यालय अपने अपने तरीकों से पढ़ाते हैं जो उनकी अनन्यता या विशेषता है। इस वजह से वे अपने हिसाब से प्रवेश मानदंड तय करते हैं। अब यह सब एकरुप हो जाएगा और इस प्रकार की विशेषताएं नहीं रह पाएंगी। दूसरे भारत जैसे बहु–संस्कृति बहुभाषी देश में एक किसी केंद्रीय पाठ्यक्रम के अनुरूप परीक्षा लेना किसी भी प्रकार से तर्कसंगत नहीं है। राज्यों के बोर्ड वाले बच्चे, जहां भारत के बहुसंख्यक बच्चे पढ़ते हैं इसमें पिछड़ जाएंगे। साथ ही, इसकी घोषणा होते ही कोचिंग संस्थानों के विज्ञापन आने शुरू हो गए और कोचिंग संस्थान शुरू हो गए हैं। अभी तक आमतौर से पेशेवर शिक्षा जैसे मेडिकल, इंजीनियरिंग आदि के लिए ही कोचिंग होती थी पर अब विश्वविद्यालय के सामान्य से कोर्स के लिए भी कोचिंग संस्थान खुल जाएंगे और जो लोग इस कोचिंग का खर्च वहन कर सकेंगे उनके बच्चे ही इस प्रवेश परीक्षा में सफल हो पाएंगे।

दिल्ली विश्वविद्यालय में तो यह प्रस्ताव रखा है कि कुल क्रेडिट के 50 प्रतिशत क्रेडिट कहीं से भी लाए जा सकते हैं– यानी दिल्ली विश्वविद्यालय के बाहर से। जैसा हमने ऑनलाइन शिक्षा और ऑनलाइन परीक्षा में देखा है कि बच्चे सामूहिक रूप से परीक्षा देते हैं और अच्छे नंबर लाते हैं। इसलिए अच्छे नंबरों के लालच में बच्चे पचास प्रतिशत क्रेडिट ऑनलाइन कोर्सों से ले लेंगे। और यदि विश्वविद्यालय के बाकी बच्चे कोर्स में 40 परसेंट मिश्रित शिक्षा के नाम पर ऑनलाइन हो जाएंगे तो केवल 10 प्रतिशत ही शिक्षकों को पढ़ाने होंगे। अब यूनिवर्सिटी में पढ़ाने के लिए शिक्षकों की आवश्यकता ना होगी, ना विश्वविद्यालय किसी विमर्श का केंद्र बनेंगे, ना किसी गतिविधि का, ना विरोध का, बस केवल अंक और डिग्री प्रदान करने वाली एक संस्था बन के रह जाएंगे।

इस प्रकार यह शिक्षा नीति स्कूल और कॉलेज दोनों की संख्या कम करने का प्रस्ताव रख रही है जबकि हमारे देश में इनकी, शिक्षकों की व अन्य संसाधनों की बढ़ोतरी की आवश्यकता है। ऑनलाइन शिक्षा पर प्रमुख जोर होने के कारण यह शिक्षा नीति कुछ सुविधा संपन्न लोगों को तो कुछ शिक्षा दे सकती है पर आम जनता के लिए शिक्षा या अर्थपूर्ण शिक्षा दूर की चीज ही हो जाएगी। ऑनलाइन शिक्षा के लिए गूगल और जिओ में भी करार हो चुका है और अनेक कंपनियां इसमें पूरी तरह कूद चुकी है। पाठ्यक्रम की एकरूपता इस प्रकार की कंपनियों के लिए बहुत लाभदायक है क्योंकि उन्हें एक ही कंटेंट बनाना होगा। एक बार कंटेंट बन गया तो उसके बाद उसे कई सालों तक इस्तेमाल किया जा सकेगा। एक अनुमान के अनुसार भारत में 1.96 बिलियन डॉलर ऑनलाइन व्यापार होगा। अर्थात जहां लोगों के हाथों से शिक्षा जाएगी उनकी दुर्दशा से भी मुनाफा कूटने की भरपूर तैयारी हो चुकी है।

यह शिक्षा नीति सिर्फ व्यवसायीकरण ही नहीं बल्कि पूरी शिक्षा के कारपोरेटीकरण (निजी कंपनियों को सौंपने) की नीति है जिससे आम जनों की शिक्षा से बेदखली तय है।

जहांगीपुरी रिपोर्ट ....

(पृष्ठ 5 का शेष)

चक्कर लगाए, जब तक कि जुलूस में शामिल लोगों ने मस्जिद को ऐसे समय में जब लोग वहां नमाज अदा करने और रोजे तोड़ने के लिए जमा हो रहे थे, निशाना बनाकर सांप्रदायिक हिंसा भड़काने में कामयाबी हासिल नहीं कर ली। पुलिस ने इस पूरी घटना को ऐसे किया है कि 'हनुमान जयंती' जुलूस को बार–बार उस इलाके में घूमकर सांप्रदायिक हिंसा करवाने के लिए जिम्मेदार लोग प्रमुख साजिशकर्ता नहीं हैं बल्कि साजिशकर्ता वे स्थानीय मुसलमान हैं जिन्होंने अधिकांश भाग में हथियार लहराते हुए चलने वाले जुलूस में शामिल लोगों के उकसावे में आने से इनकार कर दिया।

यह बड़ी राहत की बात है कि सांप्रदायिक ताकतों के लोगों को धार्मिक आधार बांटने के इन शर्मनाक प्रयासों के बावजूद कॉलोनी के सी ब्लॉक के स्थानीय हिंदू और मुसलमान नागरिकों ने न सिर्फ इस साजिश का धैर्य से सामना किया है बल्कि अपनी धार्मिक पहचान को अपने दैनिक जीवनचर्या के रास्ते में आने से भी रोका है। यह सांप्रदायिक ताकतों के खिलाफ लड़ने वालों के विश्वास की पुष्टि करता है और इस बात की भी पुष्टि करता है कि समय–समय शासकों द्वारा मचाई गयी उथल–पुथल को छोड़कर विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग हजारों वर्षों से शांतिपूर्ण ढंग से सस्थ–साथ रहते आये हैं।

हमारी मांगें

उपरोक्त निष्कर्षों के आलोक में जनहस्तक्षेप मांग करता है किः

सी ब्लाक जहांगीरपुरी में हुई 16 अप्रैल 2022 कि सांप्रदायिक घटना के कारणों की दिल्ली उच्च न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश द्वारा स्वतंत्र जांच कराई जाए।

हनुमान जयंती के अवसर पर 'अवैध' शोभा यात्रा निकालने और बार–बार सांप्रदायिक हिंसा भड़काने की कोशिश करने वालों के खिलाफ कानून के प्रासंगिक प्रावधानों के अनुसार तुरंत कार्रवाई की जाए।

जो दोषी पुलिस अधिकारी अवैध जुलूस को रोकने के बजाय उसका साथ दे रहे थे, उन पर माननीय ए०एस०जे० न्यायालय की सिफारिशों के अनुसार कानून और सेवा नियमों के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत मुकदमा चलाया जाए।

ए.आई.के.एम.एस. धरना

(पृष्ठ 1 का शेष)

भी भागीदारी होगी, क्योंकि जल, जमीन, जंगल देश की जनता की संपत्ति है। एआईकेएमएस सचिव का. भालाचंद्र षडंगी, जागृति आदिवासी दलित संगठन से माधुरी, एआईयूएफडब्ल्यूपी महासचिव रोमा, एआईकेकेएमएस अध्यक्ष सत्यवान, एनटीयूआई उपाध्यक्ष अशोक चौधरी, हिमांशु कुमार के अलावा एआईकेएमएस के का. रामिन्दर पटियाला, का. धर्मपाल सिंह, का. रामवृक्ष आदि नेताओं ने धरने को संबोधित करते हुए केंद्र सरकार से वन संरक्षण नियम 2022 वापस लेने की मांग की। इनके अलावा धरने को विभिन्न प्रांतों से आये आदिवासी नेताओं तथा प. बंगाल से का. नोतन ने संबोधित किया।

नेताओं ने कहा कि वन संरक्षण नियम 2022 जंगल पर आदिवासियों के अधिकार संबंधी एफआरए 2006 कानून की मौत की घंटी है। यह संशोधन पूरी तरह से कारपोरेट के पक्ष में और वन, पर्यावरण, आदिवासियों, पारंपरिक वनवासियों के साथ ही देश की आम जनता का विरोधी है। यह ग्राम सभाओं के अधिकारों को समाप्त कर देगा। यही नहीं यह संशोधन राज्य सरकारों के संघीय अधिकारों को भी कमजोर करता है। वक्ताओं ने कहा यदि वन भूमि के विशाल हिस्सों को बड़े पैमाने पर कारपोरेट को उनकी विभिन्न परियोजनाओं और प्राकृतिक खनिज संपदाओं की लूट के लिए सौंपा गया तो इससे लाखों–लाख आदिवासियों व अन्य पारंपरिक वनवासियों को अपनी जमीन और आजीविका से बेदखल होने के साथ ही अपने प्राकृतिक वास से भी वंचित होना पड़ेगा।

वन अधिकार अधिनियम 2006 के तहत किसी भी गैर वानिकी उद्देश्यों के लिए वन भूमि का उपयोग करने से पूर्व आदिवासियों तथा अन्य परंपरागत वनवासियों के वन अधिकारों का अनुपालन अनिवार्य है। निजी परियोजनाओं के लिए वन भूमि के हस्तांतरण से पहले केंद्र सरकार को वनवासियों की सहमति लेना जरूरी है। राज्य सरकार को ग्राम सभा की अनुमति तथा वन भूमि पर उनके अधिकारों की मान्यता को सुनिश्चित करना होता है। संशोधन के बाद केंद्र सरकार बिना किसी बाधा के वन भूमि के हस्तांतरण के सौदे को मंजूरी दे सकती है और निजी क्षेत्र से उसकी कीमत भी ले सकती है।

वन संरक्षण नियमों में संशोधन आदिवासियों, वनों और पर्यावरण के खिलाफ साजिश

भालचंद्र षडंगी

28 जून 2022 को आरएसएस–भाजपा की केंद्र सरकार के वन, पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन विभाग ने 'वन संरक्षण अधिनियम – 1980' के नियमों में संशोधन के लिए एक अधिसूचना जारी की है। 'वन संरक्षण नियम – 2022' के रूप में जाने जाने वाले इस संशोधन को संसद के वर्तमान मानसून सत्र में पेश किए जाने की संभावना है। यदि इसे किसी विरोध का सामना नहीं करना पड़ता है, तो इसे अनुमोदित किया जाएगा और यह मौजूदा वन संरक्षण नियमों की जगह लेगा जो 2004, 2014 व 1017 में हुए संशोधनों के साथ अस्तित्व में हैं।

1865 में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों द्वारा देश के वन संसाधनों पर अपना एकाधिकार स्थापित करने के लिए देश में पहला वन अधिनियम बनाया गया था। 1865 का अधिनियम 1878 के वन अधिनियम का अग्रदूत था, जिसने वनों में रहने वाले समुदायों द्वारा वनों के सदियों पुराने पारंपरिक उपयोग को कम कर दिया और वानिकी पर औपनिवेशिक सरकार का नियंत्रण सुरक्षित किया। इस अधिनियम के बाद, वनों में रहने वाले आदिवासी और अन्य पारंपरिक वनवासी अवैध अतिक्रमणकर्ता बन गए और अपने ही वनों में अपराधी माने जाने लगे। यद्यपि वे पीढ़ियों से वनों में पैदा हुए और रह रहे हैं, वे अपनी वन भूमि या उसके संसाधनों पर अधिकारहीन हो गये। पीढ़ियों से वन विभाग के अधिकारियों द्वारा उनका शोषण, उत्पीड़न और दमन किया जाता रहा है। 2006 में भारत सरकार पहली बार वन अधिकारों के इस अलगाव को एक ऐतिहासिक अन्याय के रूप में मान्यता देने को बाध्य हुई और वन अधिकार अधिनियम–2006 के माध्यम से उनके अधिकारों को सुनिश्चित करके इस अन्याय को खत्म करने का वायदा किया।

गौरतलब है कि 2002 में "टीएन गोदावर्मन बनाम भारत सरकार" मामले में देश के सर्वोच्च न्यायालय ने वनों में रहने वाले और खेती करने वाले करोड़ों आदिवासियों और पारंपरिक वनवासियों को अवैध अतिक्रमणकर्ता बताते हुए सभी राज्य सरकारों और केंद्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपालों को वन भूमि से उन्हें तुरंत बेदखल करने का निर्देश दिया था। इस आदेश के तुरंत बाद, असम और देश के विभिन्न हिस्सों में वन विभाग ने आदिवासियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों (ओटीएफडी) को सशस्त्र पुलिस और प्रशिक्षित हाथियों का उपयोग करके उनके घरों और खड़ी फसलों को नष्ट कर जबरन बेदखल करना शुरू कर दिया। विभिन्न सरकारों के इस जबरन बेदखली अभियान के खिलाफ आदिवासियों और ओटीएफडी के बीच एक गंभीर असंतोष पैदा हुआ। आदिवासियों और पारंपरिक वनवासियों द्वारा देश भर में बड़े पैमाने पर इसका विरोध किया गया; यहां तक कि जबरन बेदखली का कई जगहों पर प्रतिरोध किया गया। लोगों के इस बढ़ते गुस्से ने कई राज्य सरकारों को स्थिति को संभालने के लिए कुछ कानूनी उपाय करने के लिए केंद्र सरकार को पत्र लिखने के लिए मजबूर किया। इसी संदर्भ में सरकार ने जन–असंतोष को दूर करने के लिए जनजातियों और पारंपरिक वनवासियों के वन अधिकारों को कानूनी मान्यता देने का निर्णय लिया। विभिन्न हितधारकों के साथ विचार–विमर्श के बाद, तत्कालीन यूपीए सरकार ने 2006 में वन अधिकार अधिनियम बनाया।

हालांकि, आदिवासी और ओटीएफडी के साथ किए गए ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने का वायदा करने के बावजूद उन्हें इस कानून में वन भूमि और संसाधनों पर उनका वांछित पूर्ण अधिकार नहीं दिया गया है लेकिन फिर भी इस नए कानून ने पहली बार वनों पर आदिवासियों और अन्य पारंपरिक वनवासी समुदायों को कम से कम कुछ कानूनी अधिकार दिए हैं। 1878 के बाद पहली बार, देसज लोगों और वनों में रहने वाले पारंपरिक वनवासियों को अतिक्रमणकारियों के रूप में बुलाए जाने के बजाय उन्हें वन भूमि के वैध अधिकार धारकों के रूप में मान्यता दी गई। यह सच है कि उत्तरोत्तर सरकारों और उनके प्रशासनिक तंत्र की ईमानदारी और राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण, यह कानून अभी तक अपने इच्छित उद्देश्य के अनुसार ठीक से लागू नहीं हुआ है। लेकिन अभी भी पिछले 16 वर्षों में देश के विभिन्न हिस्सों में दसियों लाख लोग विशेष रूप से आदिवासियों ने इस कानून का कुछ हद तक लाभ उठाया है। इस कानून का उपयोग करके लोग नियमगिरि और कुछ अन्य स्थानों पर बड़ी कंपनियों के वन भूमि हथियाने को रोकने में सक्षम हुए हैं।

इस कानून का सबसे महत्वपूर्ण पहलू ग्राम सभाओं की भूमिका है। वन भूमि और उसके संसाधनों पर आदिवासियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों के अधिकारों को निर्धारित करने के लिए ग्राम सभाओं को अधिकृत किया गया है। यह अधिकार संरक्षित वन और यहां तक कि अभयारण्यों समेत देश के सभी प्रकार के वनों पर लागू होता है। इसके अलावा, यह भी प्रावधान है कि गैर–वन गतिविधियों के लिए विशेष रूप से निगमों और सरकार की विभिन्न परियोजनाओं के लिए किसी भी वन भूमि के इस्तेमाल की अनुमति देने से पहले संबंधित क्षेत्र की ग्राम सभा का अनुमोदन अनिवार्य है। इसने सरकार को पहले की तरह अपनी इच्छानुसार वन भूमि में बड़े कॉरपोरेट की परियोजनाओं को अनुमति देने को लगभग रोक दिया।

18 अप्रैल 2013 के सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक वेदांत फैसले ने ग्राम सभा के माध्यम से वन भूमि पर इन समुदायों के अधिकार की पुष्टि की है। इसने स्पष्ट रूप से कहा कि एफआरए–2006 सभी वन भूमि के लिए लागू है और ग्राम सभा की सहमति के बिना गैर–वानिकी उद्देश्यों के लिए कोई वन भूमि नहीं सौंपी जा सकती। उस फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने नियमगिरि पर्वत श्रृंखला के डोंगरिया कोंध आदिवासियों और पारंपरिक वनवासियों को ग्राम सभा के माध्यम से वन भूमि पर अपने अधिकारों का प्रयोग करने की अनुमति दी। तदानुसार 12 गांवों में ग्राम सभाएं बुलाई गई और लोगों ने सर्वसम्मति से वेदांत की प्रस्तावित खनन परियोजना के लिए जोरदार "ना" कहा। उस समय, ओडिशा सरकार के सभी प्रयासों के बावजूद, नियमगिरि में आयोजित सभी 12 ग्राम सभाएं वेदांत जैसी बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनी के खनन प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकी थीं। नियमगिरि के लोग वन अधिकार अधिनियम में दी गई ग्राम सभा की शक्तियों का प्रयोग करके अपने जंगल और आजीविका को बचा सके थे।

यहां यह उल्लेखनीय है कि देश के करोड़ों आदिवासी और पारंपरिक वनवासी जहां वन अधिकार अधिनियम–2006 को वन और उसके संसाधनों पर अपने अधिकारों की रक्षा के रूप में मानते हैं, वहीं बड़े कॉरपोरेट इसे अपने हितों के लिए बाधा मानते हैं। खासकर नियमगिरि के अनुभव के बाद उनकी आशंका कई गुना बढ़ गई है। वन क्षेत्रों में खदानों, कारखानों, बड़े नदी बांधों आदि के लिए भारी धन का निवेश करने के लिए बेताब ये कंपनियां वन अधिकार अधिनियम–2006 और वन संरक्षण नियमों को निरस्त या कम से कम संशोधित करना चाहती हैं जो ग्राम सभाओं को सशक्त बनाते हैं। यही वजह है कि मोदी सरकार वन अधिकार अधिनियम–2006 और ग्राम सभाओं के अधिकारों को कमजोर या दंतहीन बनाना चाहती है। 2014 में सत्ता में आने के बाद, हालांकि वे बड़े कॉरपोरेट के हित में वन अधिकार अधिनियम–2006 में संशोधन करना चाहते थे, लेकिन आदिवासी प्रतिरोध के डर से वे ऐसा करने की हिम्मत नहीं कर सके। इसलिए पिछले दरवाजे से वन अधिकार अधिनियम को कमजोर और निष्प्रभावी बनाने की साजिश शुरू की है। हाल ही में अधिसूचित 'वन संरक्षण नियम–2022' इस साजिश का परिणाम है।

सरकार के वन संरक्षण नियमों में नवीनतम संशोधन वन अधिकार अधिनियम–2006 के अधिनियमन के बाद हुए सभी सकारात्मक परिवर्तनों को समाप्त कर देगा। वन संरक्षण अधिनियम–1980 की धारा–4 के तहत वन संरक्षण नियमों में हाल के इस संशोधन में दो खतरनाक प्रावधान हैं। सबसे पहले, केंद्र सरकार ग्राम सभा की अनुमति के बिना और आदिवासियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों के वन अधिकारों की अनदेखी कर किसी भी गैर–वानिकी उद्देश्य के लिए किसी भी वन भूमि को सीधे अधिग्रहित कर सकेगी और निजी कम्पनियों को सौंप सकेगी। दूसरे, यह उस वन भूमि में रहने वाले और जीविकोपार्जन करने वाले लोगों को बिना किसी प्रकार के मुआवजे के बेदखल कर सकेगी और उसमें जंगल को पूरी तरह से नष्ट करने की अनुमति भी दे सकेगी। दूसरे शब्दों में, वन क्षेत्र के अंदर कॉरपोरेट की किसी भी निजी परियोजना को चलाने के लिए ग्राम सभा से पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं है। इसे देश के लाखों आदिवासियों और पारंपरिक वनवासियों के वन अधिकारों का घोर उल्लंघन कहा जा सकता है। यह स्पष्ट दर्शाता है कि केंद्र की भाजपा–आरएसएस सरकार केवल बड़ी कंपनियों को लाभ पहुंचाने के लिए हमारे समाज के इन सबसे कमजोर समूहों से जमीन और जंगल छीनना चाहती है।

"वन संरक्षण नियम – 2022" लागू हो जाने के बाद, लाखों आदिवासी और पारंपरिक वनवासी जो वन भूमि पर खेती करते हैं और रहते हैं, उनके वन अधिकारों पर खात्मे का खतरा मंडरायेगा। यह याद रखना चाहिए कि 2006 में वन अधिकार कानून के लागू होने के बाद, सरकार ने वन संरक्षण अधिनियम– 1980 के नियमों में संशोधन किया था। ऐसा ou vfèdkj vfèfu;e 2006 ¼FRA) के अनुपालन के लिए किया गया था। लेकिन इस बार, वन अधिकार अधिनियम 2006 के अनुपालन में वन भूमि के परिवर्तन के बारे में वन (संरक्षण) अधिनियम 1980 के तहत जो कुछ बचा है उसे हटाने के लिए है। मंत्रालय ने 'वन संरक्षण नियम–2022' नामक नए नियमों को अधिसूचित किया है वन संरक्षण नियम 2003 और 2004, 2014 और 2017 में इसके संशोधनों को निरस्त करने और बदलने के लिए। अतः इस संशोधन के बाद किसी भी अनुपालन की जरुरत न होने के कारण वन अधिकार अधिनियम–2006 के तहत ग्राम सभा के पास वस्तुतः कोई शक्ति नहीं होगी।

3 अगस्त 2009 को केंद्रीय वन और पर्यावरण मंत्रालय ने एक अधिसूचना में स्पष्ट किया था कि वन क्षेत्र में भूमि लेने के लिए मूल अनुमोदन के लिए ग्राम सभा का सहमति पत्र अनिवार्य है। 6 मार्च 2017 को आरएसएस–भाजपा सरकार के वन और पर्यावरण विभाग ने कॉरपोरेट दबाव में वन संरक्षण नियमों में संशोधन किया और उन्हें वन परमिट नियमों में बदल दिया, लेकिन फिर भी ग्राम सभा की मंजूरी की आवश्यकता को पहले की तरह बरकरार रखा। लेकिन वन संरक्षण अधिनियम की धारा –6 (बी) (2) के अनुसार, वन संरक्षण नियमों में इस नवीनतम संशोधन के बाद, वन अधिकार अधिनियम–2006 के अनुपालन की अब आवश्यकता नहीं रहेगी। परिणामस्वरूप वन भूमि को गैर वन उपयोग के लिए आवंटित करते समय ग्राम सभा की स्वीकृति की आवश्यकता को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया है।

ग्राम सभा "वन अधिकार अधिनियम–2006" का एक अभिन्न अंग है। पेसा अधिनियम–1996 ने विशेष रूप से अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम सभा को सशक्त बनाया है। अतः ग्राम सभा की शक्ति के बिना वन अधिकार अधिनियम–2006 अर्थहीन हो जाएगा। अतः इस नवीनतम संशोधन के माध्यम से "वन अधिकार अधिनियम–2006" अप्रभावी हो जाएगा और वन संरक्षण अधिनियम–1980 अपनी पूर्व स्थिति में वापस आ जायेगा। आदिवासियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों के बजाय, केंद्र सरकार के पास एक बार फिर से वन भूमि पर पहले की तरह असीमित और पूर्ण अधिकार होगा। केंद्र सरकार हजारों हेक्टेयर वन भूमि कॉरपोरेट को आवंटित करेगी और वहां रहने वाले आदिवासी और वनवासी केवल दर्शक होंगे। यह संशोधन, जो कॉरपोरेट के लिए अनुकूल है, वन क्षेत्रों में और उसके आसपास रहने और खेती करने वाले लगभग 40 करोड़ आदिवासी और पारंपरिक वनवासियों की आजीविका को नष्ट कर देगा। विभिन्न कॉरपोरेट परियोजनाओं के लिए बड़ी मात्रा में वनों के हस्तांतरण से हमारे पर्यावरण, जंगल और उनके भीतर रहने वाले वन्यजीवों को गंभीर नुकसान होगा। इस डर के कारण आदिवासियों व पारंपरिक वनवासियों के वन अधिकारों और पर्यावरण संरक्षण के लिए काम करने वाले कई संगठनों, यहां तक कि कई विपक्षी दलों ने भी वन संरक्षण नियमों में इस नवीनतम संशोधन का विरोध किया है।

वन संरक्षण नियम – 2022 में कहा गया है कि राज्य सरकार गैर–वन गतिविधियों के लिए वन भूमि की स्वीकृति

(शेष पृष्ठ 8 पर)

सरकार की वादाखिलाफी के विरोध में संयुक्त किसान मोर्चो के आवाहन पर 31 जुलाई 2022 को देश भर में रास्ता रोको, रेल रोको तथा विरोध प्रदर्शन किये गये। एम.एस.पी. की कानूनी गारंटी, केसों का वापस न लिया जाना तथा किसानों से केन्द्र सरकार द्वारा किये गये वायदों को न पूरा किया जाने के विरोध में इस विरोध का आवाहन किया गया था। अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा ने देश भर में इन विरोध प्रदर्शनों में सक्रिय हिस्सेदारी की तथा कई जगहों पर इनका आयोजन किया। पंजाब में किसान संगठनों के संयुक्त बैनर तले रेल रोको में किसानों ने बड़े पैमाने पर भाग लिया। ऊपर दिये गये फोटो (बायें) अमृतसर (पंजाब) में रेल लाईन पर किसानों का विशाल एकट्ठ तथा (दायें) सासाराम (बिहार) में रास्ता जाम करते किसान संगठनों के कार्यकर्त्ता।

वन संरक्षण नियमों में संशोधन आदिवासियों, वनों और पर्यावरण के खिलाफ साजिश

(पृष्ठ 7 का शेष)

में वन, वन्य जीवन और पर्यावरण पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव का आंकलन करेगी। लेकिन इसका जंगल में रहने वाले आदिवासियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा; नियमों में इसका कोई जिक्र नहीं है। नियमों में कहीं भी उनके अपने विचार व्यक्त करने या उस संबंध में 'हां' या 'नहीं' कहने के अधिकार का उल्लेख नहीं है। कहा गया है कि केंद्र सरकार को वन भूमि को मंजूरी देने का अधिकार होगा और क्षतिग्रस्त जंगलों के प्रतिपूरक वनीकरण के लिए पैसा केंद्र के खजाने में जाएगा। प्रस्तावित पूरे नियमों में वन भूमि के उस हिस्से में रहने वाले देसज और अन्य पारंपरिक वनवासियों के अधिकारों की सुरक्षा की सरकार की जिम्मेदारी का कोई प्रावधान नहीं है। किसी भी परियोजना के लिए हस्तांतरित की जाने वाली वन भूमि में रहने और जीवन यापन करने वाले आदिवासियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों के भविष्य की कोई चिंता नहीं है। ऐसे मामलों में, यदि वे अपनी भूमि से विस्थापित हो जाते हैं या उनकी वन आधारित आजीविका समाप्त हो जाती है, तो उन्हें किसी भी प्रकार का मुआवजा या पुनर्वास नहीं मिलेगा। इस प्रकार प्रस्तावित नियमों के माध्यम से केंद्र सरकार वनों पर निर्भर देश के लगभग 40 करोड़ आदिवासियों और पारंपरिक वनवासियों के अधिकार और आजीविका छीनना चाहती है और उन्हें विदेशी और स्थानीय कंपनियों को सौंपना चाहती हैं।

इस अधिसूचना की धारा–8 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पांच हेक्टेयर से अधिक की किसी भी वन भूमि को किसी अन्य गैर–वन गतिविधियों के लिए उपयोग करने के लिए भारत सरकार को अब पहले की तरह वन और पर्यावरण विभाग द्वारा गठित वन सलाहकार समिति से संपर्क करने की आवश्यकता नहीं होगी। प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश को अपनी पांच सदस्यीय परियोजना स्क्रीनिंग कमेटी बनानी चाहिए और अपनी सिफारिश अंतिम अनुमोदन के लिए केंद्र सरकार को भेजनी चाहिए। यदि इसे लागू किया जाता है, तो विशाल वन भूमि का उपयोग निजी कंपनियों की गैर–वन गतिविधियों के लिए किया जाएगा और बड़े पैमाने पर वन विनाश की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। बेशक, इस वन विनाश के लिए वित्तीय मुआवजा केंद्र सरकार के कोष में जाएगा। जंगल की गुणवत्ता के आधार पर सरकार कंपनियों से 10.69 से 15.95 लाख रुपये प्रति हेक्टेयर चार्ज करेगी।

हालांकि यह नवीनतम संशोधन सरकार वन संरक्षण अधिनियम–1980 के नियमों में कर रही है, इसका असली निशाना वन अधिकार अधिनियम–2006 है। हालांकि सरकार मौजूदा वन अधिकार अधिनियम को कमजोर करके कॉरपोरेट को लाभ पहुंचाना चाहती है, लेकिन वह इसमें सीधे संशोधन नहीं कर सकती। वह एफआरए के स्थान पर नया कानून लाने की राजनीतिक कीमत वहन नहीं कर सकती। चूंकि वन और पर्यावरण मंत्रालय और जनजातीय मामलों के मंत्रालय दोनों इस कानून में शामिल हैं, इसलिए सरकार को उनके प्रयासों को समन्वित करना जरुरी होगा और यह प्रक्रिया समय लेने वाली होगी। साथ ही वन अधिकार कानून में किसी भी संशोधन के लिए विधेयक को खुलेआम लाकर उसका कारपोरेट समर्थक रुख लोगों के सामने उजागर होगा और इसकी पहचान आदिवासी विरोधी के रूप में होने की संभावना है। इसलिए सरकार वन संरक्षण नियमों में संशोधन कर "वन अधिकार अधिनियम– 2006" को पिछले दरवाजे से कमजोर और अप्रभावी बनाना चाहती है।

हमारे देश में वनों और पर्यावरण की रक्षा के नाम पर 1980 में वन संरक्षण कानून बनाया गया था। परंतु इसके लागू होने के बाद से सरकार विकास के नाम पर हर साल लाखों एकड़ वन भूमि बड़े व्यापारियों और कॉरपोरेट को सौंपने के लिए इसे केवल एक उपकरण के रूप में उपयोग करती रही है। सरकार वन संरक्षण के हित में इस गलत नीति की समीक्षा करना भी नहीं चाहती। हालांकि वन अधिकार अधिनियम – 2006 के बाद वन भूमि के हस्तांतरण की प्रक्रिया को कुछ हद तक विनियमित किया गया लेकिन फिर भी इन वर्षों में भी बड़े पैमाने पर वन भूमि का परिवर्तन जारी है। 2008 में वन अधिकार अधिनियम–2006 की अधिसूचना से 2019 तक कुल 2,53,179 हेक्टेयर वन भूमि गैर–वानिकी गतिविधियों के लिए सौंप दी गई है और अन्य 47,500 हेक्टेयर वन भूमि प्रतिपूरक वनीकरण के नाम पर आवंटित की गई है। वन संरक्षण नियमों का ताजा संशोधन विकास के नाम पर वन भूमि सौंपने की इस प्रक्रिया को और गति देगा। लगता है कि वन संरक्षण कानून वनों को संरक्षित करने के बजाय मूल रूप से कॉरपोरेट घरानों के हित के लिए इसका निगमीकरण कर रहा है।

10.5 करोड़ आदिवासियों सहित लगभग 40 करोड़ लोग हमारे वनों पर आश्रित हैं, जो देश की भूमि का लगभग 18% यानी 3.2 करोड़ हेक्टेयर है। वन अधिकार अधिनियम–2006 के माध्यम से सरकार ने उन्हें उपरोक्त वन भूमि और उसके संसाधनों पर कुछ अधिकार दिए, लेकिन वन संरक्षण नियमों में नवीनतम परिवर्तन केवल उनके लिए काले दिन लाएंगे। इससे हमारे वनों, पर्यावरण और वहां रहने वाले लोगों की कीमत पर बड़े कॉरपोरेट को फायदा होगा। भाजपा–आरएसएस सरकार द्वारा हमारे जंगल और आदिवासी लोगों के साथ इस विश्वासघात का हर कीमत पर प्रतिरोध किया जाना चाहिए।

यूक्रेन : बदलता वैश्विक परिदृश्य

(पृष्ठ 4 का शेष)

आज समाजवादी रूस (पूर्व सोवियत संघ) और चीन दोनों पूंजीवादी बन चुके हैं। विकास के नाम पर पिछड़े देशों के शासक वर्ग बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से साम्राज्यवाद के मकड़जाल में फंसे हुए हैं। इस सबके बावजूद, साम्राज्यवादी व्यवस्था का संकट कम नहीं हुआ। दुनिया में भूख की समस्या, गरीबों की संख्या और असमानता बढ़ रही है। भेदभाव, हिंसा और युद्ध का दावानल फैलता जा रहा है। अमेरिकी राष्ट्रपति बाइडेन कह रहे हैं 1900 से 1945 तक (दो विश्वयुद्ध) के अंतराल में 6 करोड़ लोगों की जान की कीमत पर वर्तमान ''सभ्य'' ''लोकतांत्रिक'' समाज बन सका है। अब जब तीसरे युद्ध और परमाणु हथियारों का जखीरा है तो जाहिर है फिर वे करोड़ों की जान के बदले संकट से निकलने की मानसिकता में हैं। लोकतंत्र और सभ्यता की दुहाई देने वाले श्वेत नस्लवादी, फासीवादी, दक्षिणपंथी तानाशाही के रास्ते पर हैं।

प्रतिक्रियावाद और क्रांति के बीच यथास्थिति की दुहाई देकर बीच का रास्ता निकालने वाले समझौतापरस्तों के लिए गुंजाइश खत्म होती जा रही है। स्थितियां जिस दिशा में हैं, क्रांति के जरिए शोषण और लूट की व्यवस्था को उखाड़ फैंकने के परिस्थितियां अनुकूल होती जा रही हैं।

मंडावर (बिजनौर उ.प्र.) में ए.आई.के.एम.एस. द्वारा जनसभा

अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा ने बिजनौर जिले के मंडावर कस्बे में मौहल्ला अफगानान में का. आमिर शाह की अध्यक्षता में एक सभा आयोजित की जिसमें क्षेत्र के गरीब ग्रामीणों ने भाग लिया। ए.आई.के.एम.एस. के प्रांतीय उपाध्यक्ष का. शमशाद हुसैन तथा का. मुसतकीम सहित सभा के स्थानीय नेताओं ने बैठक को संबोधित किया।

जनसभा में क्षेत्र के गरीब ग्रामीणों के रोजगार के अवसरों की कमी तथा पुलिस द्वारा ठेले लगाकर गुजारा करने वाले गरीब मजदूरों को तंग करना तथा उनसे अवैध वसूली के मुद्दे उठाये गये। वक्ताओं ने इन गरीब लोगों का रोजगार बहाल करने के लिए संघर्ष की जरुरत पर जोर दिया। साथ ही जिला प्रशासन कार्यालय में भारी धांधली तथा भ्रष्टाचार का मुद्दा उठाया तथा कार्रवाई की मांग की।

If Undelivered, Please Return to

Pratirodh Ka Swar

Monthly

Balmukand Khand,
Girinagar,
New Delhi-110019

Hindi Organ of CPI(ML)-New Democracy

R. N. 47287/87

Book Post

To

_____
_____
_____
_____
_____
_____

प्रकाशक, मुद्रक व स्वामी यतेन्द्र कुमार द्वारा स्टार ऑफसेट, टी-2151/8-ए-2, न्यू पटेल नगर, नई दिल्ली-110008 से मुद्रित व बालमुकन्द खण्ड, गिरी नगर, नई दिल्ली-110019 से प्रकाशित। सम्पादक : यतेन्द्र कुमार